भारत सरकार

भारत

का

विधि आयोग

सिविल मुकदमे के खर्चे

रिपोर्ट सं. 240

मई 2012

न्यायमूर्ति पी. वी. रेड्डी
(भूतपूर्व न्यायाधीश,
भारत का उच्चतम न्यायालय)
अध्यक्ष
भारत का विधि आयोग

नई दिल्ली
दूरभाष: 23019465 (नि)
23384475 (का)
फैक्स 23792745

9 मई, 2012

प्रिय मंत्री सलमान खुर्शीद जी,

मैं "सिविल मुकदमेबाजी के खर्चे" पर भारत के विधि आयोग की रिपोर्ट अग्रेनित कर रहा हूं । अशोक कुमार मित्तल (2009) विनोद सेठ (2010) और संजीव कुमार जैन (2011) वाले तीन मामलों में उच्चतम न्यायालय द्वारा व्यक्त मताभिव्यक्तियों के अनुसरण में, विधि आयोग ने गहन अध्ययन किया और कुछ राज्यों में हुए सम्मेलनों में न्यायिक अधिकारियों और अधिवक्ताओं से परस्पर विचारों का आदान-प्रदान किया । खर्चों और अधिवक्ताओं की फीस के कराधान को लागू विभिन्न उच्च न्यायालयों के नियमों का परिशीलन किया गया । (i) सफल पक्षकार को वास्तविक और युक्तियुक्त खर्च सुनिश्चित करने (ii) मिथ्या और निरर्थक मुकदमेबाजी को रोकने और (iii) अनावश्यक स्थगनों को निरुत्साहित करने के तिहरे लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए, सिफारिशें की गई है । लंबित अपीलों के खर्चों की शीघ्र वसूली सुकर बनाने के लिए विधि के संशोधन का सुझाव दिया गया है । सिफारिशों के अनुसार सिविल प्रक्रिया संहिता में कतिपय विधायी परिवर्तन प्रस्तावित हैं । धारा 35क (मिथ्या और निरर्थक मुकदमेबाजी के लिए प्रतिकरात्मक खर्च), धारा 95 (अपर्याप्त आधारों पर गिरफ्तारी, कुर्की आदि अभिप्राप्त करने के लिए प्रतिकर), आदेश 25 (खर्च की प्रतिभूति), आदेश 61 (मूल डिक्रियों से अपीलें) आदेश 20, नियम 6क (डिक्री की तैयारी) में संशोधन सुझाए गए हैं । उच्च न्यायालयों द्वारा विरचित नियमों का जहां तक उनके संबंध खर्च और अधिवक्ता फीस से है, पुनर्विचार और अद्यतन करने की आवश्यकता है । स्थगन खर्च, आदि अधिनिर्णीत करने के मामले में अच्छी पद्धति विकसित करने को इंगित किया गया है । उच्चतम न्यायालय की मताभिव्यक्तियों को ध्यान में रखा गया है । रिपोर्ट सभी उच्च न्यायालयों को भेजी जा रही है । समय गंवाए बिना दिए गए सुझाव के अनुसार सिविल प्रक्रिया संहिता का संशोधन किए जाने की आवश्यकता है ।

साभार और शुभकामना के साथ
ह0/-
(पी. वी. रेड्डी)

श्री सलमान खुर्शीद, सांसद
विधि और न्याय मंत्री
नई दिल्ली

कार्यालय : भारतीय विधि संस्थान भवन, भगवान दास रोड, नई दिल्ली. 110001
निवास : 1, जनपथ, नई दिल्ली . 110011

सूची

क्रम सं.	विशि-टियां	पृ-ठ संख्या
1	प्रारंभिक टिप्पणी	4
2	'खर्च'– परिभा-ा और लागू सिद्धांत	6
3	उच्चतम न्यायालय के विनिश्चयों में अधिकथित सिद्धांत और उजागर किए गए मुद्दे	14
4	सिविल प्रक्रिया संहिता के अधीन खर्चों से संबंधित उपबंध तथा लागू नियम और पद्धति और सुझाव गए परिवर्तन	27
5	उच्च न्यायालय नियम – एक विहंगम दृ-टि	34
6	अधिवक्ता की फीस और फीस प्रमाणपत्र	37
7	पुनरीक्षण में खर्च	43
8	धारा 35-क	43
9	धारा 95	52
10	धारा 35-ख (विलंब कारित करने के खर्च)	53
11	आदेश 17 (स्थगन खर्च)	55
12	आदेश 25 (खर्च की प्रतिभूति)	57
13	सिफारिशों का संक्षिप्तांश	58
14	**उपाबंध - 1** सिविल मुदकमेबाजी में खर्च - उच्चतम न्यायालय के कुछ निदर्शी मामले	62
15	**उपाबंध - 2** आंध्र प्रदेश अधिवक्ता फीस नियम, 2010	72

1. प्रारंभिक टिप्पणी

1.1 उच्चतम न्यायालय द्वारा व्यक्त मत कि खर्च से संबंधित विधिक उपबंधों को विधान मंडल और विधि आयोग द्वारा पुनः विचार किए जाने की आवश्यकता है, के अनुसरण में भारत के विधि आयोग द्वारा सिविल मामलों में खर्च दिलाने से संबंधित वि-ाय को उठाया गया है । पहला मामला जिसका उल्लेख इस संदर्भ में किया जाना सुसंगत है वह **अशोक कुमार मित्तल** बनाम **राम कुमार गुप्ता**[1] वाला मामला है । दूसरा **विनोद सेठ** बनाम **देविन्दर बजाज**[2] वाला मामला है । बहुत हाल ही[3] के एक अन्य निर्णय में, उच्चतम न्यायालय ने विधि आयोग और श्री अरुण मोहन (वरि-ठ अधिवक्ता) द्वारा न्यायालय के समक्ष रखे गए विभिन्न सुझावों पर ध्यान दिया और विभिन्न उच्च न्यायालयों के नियमों सहित सुसंगत उपबंधों में समुचित परिवर्तन पर विचार करने की आवश्यकता को दोहराया ।

1.2 अशोक कुमार मित्तल वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने जो कहा वह इस प्रकार है :

> “9.निस्संदेह सिविल मामलों में कम खर्च उद्गृहीत करने (या कुछ मामलों में कोई खर्च भी उद्गृहीत न करने) की वर्तमान प्रणाली पूर्णतः असमाधानप्रद है और उलझाउ या अहं या लालच से उद्भूत आरामदेह “काम-क्रय” युक्ति के रूप में अवलंबित मुकदमेबाजी के निवारक के रूप में कार्य नहीं करती । खर्च से संबंधित अधिक यथार्थवादी दृ-टिकोण अपनाया जाना समय की मांग है । क्या हमें उपयुक्ततः वास्तविक और अधिक यथार्थवादी खर्च दिए जाने के पश्चिमी मोडल को अपनाना चाहिए, ऐसा वि-ाय है जिस पर विचार-विमर्श किए जाने की अपेक्षा है और भारत के विधि आयोग का ध्यान शीघ्र ही इस ओर आकृ-ट

---

1 (2009) 2 एस. सी. सी.0 656.

2 (2010) 8 एस. सी. सी. 1.

3 संजीव कुमार जैन बनाम रघुवीर सरन चैरिटेबुल ट्रस्ट [जेटी 2011(12) एस.सी. 435]

किया जाना चाहिए ।

1.3 इसी प्रकार का मत ।***विनोद सेठ*** वाले मामले में व्यक्त किया गया है । उच्चतम न्यायालय ने खर्च से संबंधित विभिन्न पहलुओं पर चर्चा करने के पश्चात् निम्नलिखित मत व्यक्त किया :–

> “53. खर्च से संबंधित समुचित उपबंध की कमी के परिणामस्वरूप संहिता की धारा 89 को अप्रभावी बनाने के अलावा दुर्भावपूर्ण, खिझाऊ, मिथ्या, निरर्थक और अनिश्चित वादों में भारी वृद्धि हुई है । लंबित मामलों को कम करने या अनुकल्पी विवाद समाधान प्रक्रिया को प्रोत्साहित करने या सिविल न्याय प्रणाली को दिशा देने का कोई प्रयास खर्च से संबंधित समुचित उपबंधों के अभाव में असफल हो जाएगा । अतः, संहिता की धारा 35 और 35-क में खर्च और प्रतिकरात्मक खर्च से संबंधित उपबंधों पर विधानमंडल और भारत के विधि आयोग को शीघ्र ही पुनःविचार करने की आवश्यकता है ।”

1.4 तद्नुसार, विधि आयोग ने सिविल मुकदमेबाजी में खर्च दिए जाने से संबंधित वि-ाय को विचारार्थ उठाया । इसी प्रकार, एक दूसरे मामले अर्थात् **संजीव कुमार जैन** बनाम **रघुवीर सरन चैरिटेबुल ट्रस्ट**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय को खर्च से संबंधित मुद्दों पर विचार करना था । विधि आयोग ने महसूस किया कि उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपना विचार रखना और मामले में न्यायालय की सहायता करना उचित होगा । तदनुसार लिखित कथन जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ विनिर्दि-ट सुझाव थे, उच्चतम न्यायालय के समक्ष फाइल किए गए । आयोग के एक अंश-कालिक सदस्य श्री मरियापुथम (वरि-ठ अधिवक्ता) ने न्यायालय की सहायता की । डा0 अरुण मोहन, वरि-ठ अधिवक्ता (जिसे मामले में न्यायमित्र नियुक्त किया गया था) ने भी न्यायालय की काफी सहायता की । उच्चतम न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीशों ने भी विधि आयोग और न्यायमित्र द्वारा दिए गए सुझावों को विस्तार से निर्दि-ट किया, खर्च दिलाने या खर्च को शासित करने वाले नियमों को विरचित करने में अपनाए जाने के दृ-टिकोण पर व्यापकतः अपने मत अभिलिखित किए

[1] तदैव

और अंततः इस प्रकार मत व्यक्त किया : “हम भारत के विधि आयोग के उपरोक्त पैरा 14-29 के अनुसार खर्च से संबंधित उपबंधों में समुचित परिवर्तन का सुझाव देते हैं, संसद और संबद्ध उच्च न्यायालय समुचित परिवर्तन करें ।” यहां यह उल्लेखनीय है कि पैरा 14 से 22 में सिविल मुकदमेबाजी में खर्च के बारे में उल्लेख है और पश्चातवर्ती पैरा विवाचन खर्च के बारे में है ।

1.5 हाल ही में उच्चतम न्यायालय द्वारा विनिश्चित एक और मामला अर्थात् **रामरामेश्वरी देवी** बनाम **निर्मला देवी**[1] का मामला है जिसमें भी खर्च से संबंधित कतिपय सिद्धांत उपवर्णित किए गए हैं ।

1.6 इन सभी मामलों में एक ही सामान्य बात अर्थात् तीन हितकर सिद्धांतों को दोहराया गया है : (i) खर्च साधारणतया घटना के अनुसार होना चाहिए ; (ii) मुकदमेबाजी के बढ़ रहे व्ययों को ध्यान में रखते हुए यथार्थवादी खर्च अधिनिर्णीत किया जाना चाहिए ; (iii) खर्च निरर्थक और खिजाऊ, मुकदमेबाजी को रोकने के प्रयोजन को पूरा करने वाला होना चाहिए । **कापर** बनाम **स्मिथ** (1884) वाले मामले में न्यायमूर्ति बोवेन का उल्लेख करना श्रेयस्कर है । उन्होंने कहा : मैंने अपने अनुभव से यह सीखा कि एक ही रामबाण है जो मुकदमेबाजी में प्रत्येक क-ट का निवारण करती है और वह है खर्च ।

2. ‘खर्च’– परिभा-ा और लागू सिद्धांत

2.1 उन विनिश्चयों के सिद्धांतों/मार्गदर्शकों की कुछ विस्तार से निर्दि-ट करने के पूर्व, ‘खर्च’ की अवधारणा और खर्च दिलाए जाने को लागू समान्य सिद्धांतों का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा ।

2.2 ‘खर्च’ धन की ऐसी रकम को धोतित करता है जो न्यायालय मुकदमेबाजी में उपगत व्ययों की बाबत एक पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार को अदा करने का आदेश देता है । उसके सिवाय जहां कानून या

[1] (2011) 8 एस. सी. सी. 249.

न्यायालय के नियम द्वारा विनिर्दि-ट रूप से उपबंधित है, कार्यवाहियों का खर्च न्यायालय के विवेकाधिकार पर है ।[1]

2.3 **जोहनस्टोन** बनाम **दिला सोसाइटी आफ प्रिंस इडवर्ड आइसलैंड** 2 पी ई आई आर बी-28(1988) वाले मामले में कनेडियन कोर्ट आफ अपील के न्यायमूर्ति मैक्व्यैड ने निम्नलिखित शब्दों में खर्च का वर्णन किया :

> "..........धन की ऐसी रकम जो न्यायालय मुकदमेबाजी में उपगत व्यय के लिए प्रतिकर के रूप में कार्रवाई में एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को देने का आदेश देती है । परिभा-ा का यह भी आशय है कि खर्च प्रतिकर (अर्थात् प्रतिपूर्ति) के रूप में अधिनिर्णीत किए जाते हैं, नुकसानी के असमान कोई अंतवर्ती प्रतिस्थापन नहीं है अर्थात् खर्च में ऐसी कोई अवधारणा नहीं है जैसा नुकसानी में है कि क्षतिग्रस्त व्यक्ति को क्या धन द्वारा उसी स्थिति में लाया जा सकेगा जैसा वह क्षतिग्रस्त होने के पहले था ।

2.4 इस प्रकार, **मनीन्द्र चन्द्र नंदी** बनाम **अश्विनी कुमार आचार्या**, आई एल आर (1921) 48 कलकत्ता 427 वाले मामले में खर्च के उद्ग्रहण के सिद्धांत का सारतः उल्लेख किया जिसे विनोद सेठ वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा अनुमोदन सहित उद्धृत किया गया :

> "...........हमें स्मरण रहे कि खर्च की उत्पत्ति चाहे जैसे हुई हो किन्तु वे अब विफल पक्षकार को दंड के रूप में नहीं बल्कि सफल पक्षकार को ऐसे व्यय जिसके लिए उसे मजबूरन वहन करना पड़ा, हर्जाने के रूप में अधिनिर्णीत किया जाता है या जैसा लार्ड कोक ने प्रस्तुत किया, पक्षकार द्वारा अपना वाद या अपना प्रतिवाद अग्रसर करने में उपगत विधिक व्यय हेतु जो कुछ न्यायालय को प्रतीत होता है । ऐसा सिद्धांत जिस पर अब वादी को खर्च अधिनिर्णीत किए जाते हैं, यह है कि प्रतिवादी के

---

[1] हाल्सबरी ला आफ इंग्लैंड, चौथा संस्करण, जिल्द 12, पृ-ठ 414.

व्यतिक्रम ने उसे वाद फाइल करने के लिए अपरिहार्य बनाया, और प्रतिवादी के संदर्भ में यह है कि वादी ने हेतु के बिना उस पर वाद फाइल किया ; इस प्रकार, खर्च न्यायालय में अपने अधिकारों को सफलतापूर्वक उचित ठहराने के व्यय के लिए क्षतिपूर्ति हेतु अनुज्ञात आनु-ांगिक नुकसानी प्रकृति के हैं और परिणामतः कलंकित पक्षकार त्रुटिहीन पक्षकार को खर्च प्रदान करता है । ये सिद्धांत न केवल खर्च के दिए जाने बल्कि अतिरिक्त भत्ता या विशे-ा खर्च दिए जाने में भी लागू होते हैं । न्यायालय असफल पक्षकार पर शास्ति न केवल अधिरोपित करने के लिए बल्कि ऐसे मामलों में जो महत्वपूर्ण मामलों के रूप में अभिहित या कठिन और असाधारण मामले हैं, में आवश्यकतः या युक्तियुक्ततः उपगत वास्तविक व्ययों के लिए सफल वादकारी को क्षतिपूर्ति देने के लिए ऐसे विशे-ा भत्ते अनुज्ञात करने के लिए प्राधिकृत है ।[1]

ये मताभिव्यक्तियां उस समय की गईं जब सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 35-क कानूनी पुस्तक में नहीं थी ।

2.5 पी. रामनाथ अय्यर की मेजर ला लेक्सिकन, चौथा संस्करण पृ-ठ 1571 में खर्च को इस प्रकार वर्णित किया गया है :

> "खर्च किसी कार्रवाई या विशे-ा कार्यवाही को अग्रसर करने या प्रतिवाद करने में उपगत व्ययों के लिए सफल पक्षकार को कानून द्वारा प्राधिकृत कतिपय भत्ता है । वे न्यायालय में अपने अधिकारों को सफल रूप से सिद्ध करने के व्यय के लिए पक्षकार को क्षतिपूर्ति हेतु अनुज्ञात आनु-ांगिक प्रकृति के हैं । ऐसे सिद्धांत जिन पर वे वादी को अनुज्ञात है, यह है कि प्रतिवादी के व्यतिक्रम के कारण उसे निश्चय ही वाद फाइल करना पड़ा और ऐसे प्रतिवादी के लिए कि वादी ने किसी हेतु के बिना उसके विरुद्ध वाद फाइल किया । इस प्रकार, कलंकित पक्षकार त्रुटि करने वाले पक्षकार को खर्च का भुगतान करता है ।"

[1] विनोद सेठ वाले मामले में उच्चतम न्यायालय अनुमोदित उद्धृत पैरा ।

2.6 खर्च का उपबंध करने का आशय निम्नलिखित लक्ष्य प्राप्त करना है जैसाकि पूर्वोक्त **विनोद सेठ** बनाम **देविन्दर बजाज** वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा इंगित किया गया है :

(क) इसे खिजाऊ, निरर्थक और संदिग्ध मुकदमों या प्रतिवादों के निवारक के रूप में कार्य करना चाहिए । वास्तविक खर्च अदा करने के दायी बनाने की काली छाया ऐसी होनी चाहिए जो प्रत्येक मुकदमेबाज को खिजाऊ, निरर्थक या संदिग्ध दावा या प्रतिवाद करने के पहले दो बार सोचने को मजबूर करे ।

(ख) खर्च से यह सुनिश्चित होता हो कि प्रक्रिया को लागू संहिता, साक्ष्य अधिनियम और अन्य विधियों के उपबंधों का ईमानदारी और कड़ाई से पालन हो और यह कि पक्षकार विलंबकारी युक्तियां न अपनाएं या न्यायालय को भ्रमित करें ।

(ग) खर्च मुकदमे के लिए सफल वादकारी द्वारा उपगत व्यय के लिए पर्याप्त क्षतिपूर्ति प्रदान करता है । यह नाममात्र या नियत या अस्वाभाविक खर्च के प्रतिकूल मुकदमे के वास्तविक खर्च को दिलाना आवश्यक बनाता है ।

(घ) खर्च के उपबंध प्रत्येक मुदकमेबाज के लिए ऐसा प्रोत्साहन होना चाहिए कि वे अधिकांश मामलों में विचारण आरंभ करने के पूर्व अनुकल्पी विवाद समाधान प्रक्रिया अपनाए और समझौता करें । कई अन्य अधिकारिताओं में, खर्च के समुचित और पर्याप्त उपबंधों के अस्तित्व को ध्यान में रखते हुए वादकारियों को विचारण के लिए न्यायालय के समक्ष आने के पूर्व लगभग 90% सिविल वादों का समझौता करने के लिए मनाया जाए ।

(ड.) तथापि, खर्च से संबंधित उपबंध न्यायालयों और न्याय की पहुंच में बाधा डालने वाले नहीं होने चाहिए । किसी भी परिस्थिति में उचित या सद्भाविक दावे वाले किसी नागरिक को या कमजोर वर्ग के किसी व्यक्ति को जिनके अधिकार प्रभावित

हुए हैं, न्यायालयों में जाने से खर्च निवारक के रूप में नहीं होना चाहिए ।"

2.7 मनीटोवा विधि सुधार आयोग ने "सिविल मुकदमेवाजी में खर्च दिलाए जाना" पर अपनी रिपोर्ट में छः व्यापक लक्ष्य बनाए है – जो पारस्परिक संगत नहीं है – कि खर्च नियम प्राप्त करने में प्रतिस्पर्द्धा होनी चाहिए । पहला लक्ष्य क्षतिपूर्ति है : सफल मुदकमेबाजों को कम से कम अपने विधिक खर्च की आंशिक क्षतिपूर्ति की जानी चाहिए । दूसरा लक्ष्य निवारण है ; संभावित मुकदमेबाजों को अपने लक्ष्य प्राप्त करने के लिए सिविल न्याय प्रणाली का आश्रय लेने के पहले सावधानीपूर्वक सोच-विचार करने को प्रोत्साहित करना चाहिए और उस प्रणाली के भीतर अनावश्यक कदम उठाने से प्रविरत रहने को भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए । तीसरा लक्ष्य, खर्च नियमों को समझने में आसान और प्रयोग में सरल बनाना है । चौथा, विवादों के प्रारंभिक समझौते को प्रोत्साहित करना है और पांचवां न्याय की पहुंच को सुकर बनाना है । आयोग ने छठे और अंतिम लक्ष्य को महत्वपूर्ण माना वह है नमनीयता ; नियम न्यायाधीशों को यह सुनिश्चित करने की अनुज्ञा प्रदान करें कि विशि-ट मामलों में न्याय किया जाए ।"

2.8 साधारणतया खर्च दिलाए जाने को शास्ति नहीं बल्कि दूसरे पक्षकार को मुकदमेबाजी के व्ययों की प्रतिपूर्ति हेतु प्रयुक्त तरीका माना जाता है । तथापि, निरर्थक या खिजाऊ मुकदमेबाजी में लिप्त पक्षकार पर अधिरोपित खर्च का आधार अलग है । सामान्य नियम यह है कि असफल पक्षकार को सफल पक्षकार को खर्च देने का आदेश दिया जाए । इस प्रकार, "घटना के अनुसार खर्च दिलाया जाए" नियम बनाया गया है जिसका यह अभिप्राय है कि न्यायालय प्रायः यह आदेश देगा कि मुकदमा हारने वाला पक्षकार मुकदमा जीतने वाले पक्षकार को खर्च देगा । तथापि, न्यायालय को खर्च दिलाए जाने या न दिलाए जाने का विवेकाधिकार है । हाल्सबरी ला आफ इंग्लैंड के अनुसार, "इस विवेकाधिकार का प्रयोग न्यायिकतः किया जाना चाहिए, इसका प्रयोग मनमाने ढंग से नहीं किया जाना चाहिए किन्तु बुद्धि और न्याय के अनुसार होना चाहिए ।[1]

---

[1] पैरा 15 जिल्द 10, चौथा संस्करण (पुनर्मुद्रण)

2.9 फेडरल सिविल प्रोसीडिंग नियम (यूएस.ए.) के अधीन, "वस्तुतः, खर्च हावी पक्षकार को अनुज्ञात किया जाना चाहिए जब तक न्यायालय अन्यथा निदेश न दे ।" यू.एस.ए. के अधिकांश राज्यों में, अटर्नी की फीस मुकदमे के खर्च के रूप में अनुज्ञात नहीं है ।

2.10 अंतिम खर्च और अंतवर्ती खर्च हो सकते हैं ।

2.11 खर्चे का बिल विधि वाद/कार्यवाही लाने या प्रतिवाद करने में उपगत व्ययों की रकम का प्रमाणित, मदवार कथन है । दावाकृत प्रभारों/व्ययों पर प्रक्रियागत नियमों और नियत मानकों के अनुसार न्यायालय या उसके अधिकारी द्वारा कर लगाया जाता है ।

2.12 इस प्रकार, यू. के. में खर्च के निर्धारण के आधार को हाल्सबरी ला आफ इंग्लैंड में स्प-ट किया गया है :

> "जहां न्यायालय को खर्च की रकम का निर्धारण (चाहे संक्षिप्त या विस्तृत निर्धारण द्वारा) करना है तो वह उन खर्चों को मानक आधार या क्षतिपूर्ति आधार पर निर्धारण करेगा किन्तु न्यायालय किसी भी प्रकार के मामले में ऐसे खर्च अनुज्ञात नहीं करेगा जो अयुक्तियुक्तः उपगत किए गए हैं या जिनकी रकम अयुक्तियुक्त है । जहां खर्च की रकम का निर्धारण मानक आधार पर किया जाना हो वहां न्यायालय केवल ऐसे खर्च अनुज्ञात करेगा जो विवाद्यक मामलों के आनुपातिक है और ऐसे किसी संदेह का समाधान करते हैं जो उसके समक्ष इस बारे में कि क्या खर्च अयुक्तियुक्ततः उपगत किया गया है या अदा करने वाले पक्षकार के पक्ष में रकम युक्तियुक्त और आनुपातिक है, उद्भूत हो गया हो । जहां खर्च की रकम का निर्धारण क्षतिपूर्ति के आधार पर किया जाना हो वहां न्यायालय ऐसे किसी संदेह का समाधान करेगा जो उसके समक्ष इस बारे में कि क्या खर्च युक्तियुक्ततः उपगत किया गया है या प्राप्त करने वाले पक्षकार के पक्ष में रकम युक्तिसंगत था । जहां न्यायालय ऐसा आधार जिस पर खर्च का निर्धारण किया जाना है, को उपदर्शित किए बिना खर्च

के बारे में आदेश देता है या मानक आधार या क्षतिपूर्ति आधार से भिन्न आधार पर खर्च का निर्धारण किए जाने का आदेश देता है वहां खर्च का निर्धारण मानक आधार पर किया जाएगा ।"

2.13 सिविल प्रक्रिया संहिता में भाग 44 में खर्च और खर्च के हकदार के बारे में सामान्य नियम है । नियम व्यवहार निदेश द्वारा संपूरित है । तथापि, भाग 44 विद्यमान विभिन्न उपबंध अर्थात्, न्याय की पहुंच अधिनियम, 1999 और विधिक सहायता अधिनियम, 1988 की सीमा तक खर्च के निर्धारण को लागू नहीं होता । इसके अतिरिक्त, सामान्य नियम कि असफल पक्षकार को सफल पक्षकार के खर्च देने का तब तक आदेश दिया जाएगा जब तक न्यायालय भिन्न आदेश दे जो कुटुम्ब कार्यवाही को लागू न होता हो ।

2.14 न्यायालय का विवेकाधिकार का प्रयोग करते समय निम्न परिस्थितियों पर विचार किया जाना चाहिए, का उल्लेख हाल्सबरी लाज आफ इंग्लैंड में इस प्रकार किया गया है :

"खर्च के बारे में आदेश (यदि कोई है) का विनिश्चय करते समय न्यायालय को निम्नलिखित सहित सभी परिस्थितियों पर विचार करना चाहिए :

(i) सभी पक्षकारों का आचरण ;

(ii) क्या पक्षकार अपने पक्षकथन के आधार पर सफल हुआ है, चाहे वह पूर्णतः सफल नहीं हुआ है ; और

(iii) किसी पक्षकार द्वारा किया गया समझौता जिसकी ओर न्यायालय का ध्यान आकृ-ट किया गया है, के लिए ग्राह्य प्रस्ताव या न्यायालय में किया गया कोई संदाय ।

पक्षकारों के आचरण में निम्नलिखित सम्मिलित है :

(क) कार्यवाही के पूर्व और उसके दौरान आचरण और विशे-ाकर उस सीमा जहां तक पक्षकारों ने किसी सुसंगत कार्रवाई पूर्व प्रोटोकोल का पालन किया गया है ;

(ख) क्या यह किसी पक्षकार के लिए किसी विशि-ट अभिकथन या विवाद्यक को उठाना, पैरवी करना या विरोध करना युक्तिसंगत था ;

(ग) ऐसी रीति जिसमें किसी पक्षकार ने अपने पक्षकथन या विशि-ट अभिकथन या विवाद्यक की पैरवी की या प्रतिवाद किया ; और

(घ) क्या किसी दावाकर्ता ने जो अपने दावे में पूर्णतः या भागतः सफल हुआ है अपने दावे को अतिशयोक्तिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया था ।

2.15 क्षतिपूर्ति खर्चों के लिए किसी आदेश का आशय मुदकमे के ऐसे सभी खर्च को प्रदान करना है जब उसके खर्च का निर्धारण मुकदमेबाजी में उसके सभी या लगभग सभी परिव्यय की वसूली के साथ किया जाता है । क्षतिपूर्ति सिद्धांत इस उपधारणा पर आधारित है कि विजेता अपने द्वारा उपगत खर्च से अधिक खर्च वसूल नहीं कर सकता । क्षतिपूर्ति खर्च वास्तविक खर्च की संगणना का आधार या फार्मूला मात्र है । मानक आदेश की दशा में, न्यायालय केवल ऐसे खर्चों को अनुज्ञात करेगा जो मामले या विवाद्यकों के आनुपातिक है । (नियम 44, 2क द्वारा) । किसी क्षतिपूर्ति आदेश में, आनुपातिकता की कतई कोई अपेक्षा नहीं है । प्रायः खर्चे एक पक्षकार द्वारा अयुक्तियुक्त रूप से बर्ताव करने के पश्चात् क्षतिपूर्ति आधार पर दिलाए जाते हैं अर्थात् समझौते का प्रस्ताव नामंजूर करने पर बेईमान होने पर न्यायालय के आदेशों की अनदेखी करने पर और इस तथ्य के बावजूद कि दावा स्प-टतः अन्यायोचित है, मुदकमेबाजी जारी रखने पर । दूसरे शब्दों में, क्षतिपूर्ति खर्च प्रायः खिजाऊ या सार रहित कार्यवाहियों को आश्रय लेकर अयुक्तिसंगत आचरण या प्रक्रिया के दुरुपयोग के लिए प्रदान किया जाता है ।

2.16 लार्ड स्काट ने फोर-वी-ली राउक्स [2007] यू. के. एच. एल. 1

में यह मत व्यक्त किया कि "सुसंगत नियमों की भा-ा के अनुसार मानक दर पर खर्च और क्षतिपूर्ति आधार पर खर्च के बीच अधिक अंतर नहीं है । सी.पी.आर. 44.5(1) के अनुसार, जहां खर्च का निर्धारण मानक आधार पर किया जाता है वहां आदाता "आनुपातिकतः और युक्तियुक्ततः उपगत" या "आनुपातिक और युक्तियुक्त रकम" का खर्च वसूल करने की प्रत्याशा कर सकता है ; और जहां खर्च का निर्धारण क्षतिपूर्ति आधार किया जाता है, आदाता उनके सिवाय जो "अयुक्तियुक्ततः उपगत" थे या "अयुक्तियुक्त रकम" के थे, अपने सभी खर्चे वसूलने की प्रत्याशा कर सकता है । इसके सिवाय दो प्रकार के मानदंडों के बीच कोई अधिक अंतर पाना कठिन है जहां खर्च का आदेश क्षतिपूर्ति आधार पर किया गया है वहां कोई अयुक्तियुक्ततापूर्ण मानदंड साबित करने का भार दाता पर होना चाहिए । ऐसे खर्च की अवधारणा जो अयुक्तियुक्त थे किन्तु आनुपातिक रूप से उपगत किए गए थे या अयुक्तियुक्त है किन्तु आनुपातक रकम के है या परस्पर विपरीत ऐसे है जिसे समझना मेरे लिए बहुत कठिन है ।"

2.17 श्री रियाज जरीवाला (सालीसिटर) ने यह स्प-ट किया : क्षतिपूर्ति खर्च दांडिक प्रकृति के हैं क्योंकि वे एक पक्षकार को दूसरे पक्षकार के कार्यवाहियों के सदो-ापूर्ण आचरण के कारण प्रतिपूर्ति के लिए आदेशित किए जा सकते हैं । तथापि, वह प्रतिकर क्षतिपूर्ति सिद्धांत की भावना को आहत करने वाला नहीं होना चाहिए । खर्च वसूल करने वाले पक्षकार को उससे अधिक नहीं करना चाहिए जितना उसने वास्तविकतः खर्च किया है । इसे मान्यता प्रदान किया जाना चाहिए कि खर्च की शत-प्रतिशत वसूली विरलतम है किन्तु निर्धारण की क्षतिपूर्ति आधार किसी पक्षकार को मानक आधार की तुलना में अधिक नजदीक प्रतिशतता तक पहुंचाएगा ।

3. उच्चतम न्यायालय के विनिश्चयों में अधिकथित सिद्धांत और उजागर किए गए मुद्दे :

3.1 उच्चतम न्यायालय के बहुत हाल ही के विनिश्चयों का उल्लेख करने के पहले **सलेम एडवोकेट बार एशोसिएशन टी. एन.** बनाम **भारत**

संघ[1] वाले मामले में व-र्ा 2005 में उच्चतम न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा व्यक्त स्प-ट मताभिव्यक्तियों पर ध्यान देना उचित है :

> "इस तथ्य की न्यायिक अवेक्षा ली जा सकती है कि कई बेईमान पक्षकार इस तथ्य का फायदा लेते हैं कि असफल पक्षकार पर या तो खर्च अधिनिर्णीत न किया जाए या नाममात्र का खर्च अधिनिर्णीत किया जाए । दुर्भाग्यवश, पक्षकारों को अपने निजी खर्चे वहन करने का निदेश देने का प्रचलन हो गया है । अधिकांश मामलों में, संहिता की धारा 35(2) के बावजूद ऐसे आदेश पारित किए जाते हैं । ऐसा प्रचलन निरर्थक वादों के फाइल किए जाने को भी प्रोत्साहित करता है । इसके अतिरिक्त जहां कहीं खर्चे अधिनिर्णीत किए जाते हैं साधारणतया वे यथार्थ नहीं है और नाममात्र के हैं । जब धारा 35(2) घटना के अनुसार खर्च का उपबंध करती है, तो यह अंतर्निहित है कि उन मामलों के सिवाय जहां न्यायालय अपने विवेकानुसार उसका कारण अभिलिखित करते हुए अन्यथा निदेश दे, खर्च वह होना चाहिए जो सफल पक्षकार द्वारा युक्तियुक्ततः उपगत किया गया हो, खर्च सफल पक्षकार द्वारा बिताए गए समय के खर्च सहित मुकदमेबाजी के संबंध में न्यायालय फीस, अधिवक्ता फीस, टंकण और अन्य खर्च के संदाय के अलावा परिवहन, निवास, यदि कोई है या कोई अन्य आनु-ांगिक खर्च वास्तविक युक्तियुक्त खर्च होना चाहिए । उच्च न्यायालय इन पहलुओं की परीक्षा करे और जहां कहीं आवश्यक हो अपेक्षित नियम, विनियम या व्यवहार निदेश दे जिससे कि अनुपालन के लिए अधीनस्थ न्यायालयों को समुचित मार्गदर्शक सिद्धांत उपलब्ध कराया जा सके ।"

3.2 सर्वोच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त मताभिव्यक्तियों के आलोक में सुसंगत नियमों और विनियमों में कोई प्रगति नहीं हुई है ।

3.3 **अशोक कुमार मित्तल** (पूर्वोक्त) वाले मामले में उच्चतम

---

[1] (2005) 6 एस. सी. सी. 344.

न्यायालय ने इंगित किया कि कुछ मामलों में (कोई खर्च नहीं या) सिविल मामलों में नगण्य खर्च उद्गृहीत करने की वर्तमान व्यवस्था, निःसंदेह, "पूर्ण असमाधानप्रद है और खिजाऊ, या आरामदेह मुकदमे के निवारक के रूप में कार्य नहीं करती" या "कालक्रम युक्ति" है । न्यायालय खर्च के अधिनिर्णय के बनिस्वत अधिक वास्तविक दृ-िटकोण की अपेक्षा करता है । उच्चतम न्यायालय ने (i) सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 35 और 35क के उपबंध न्यायहित में खर्च अधिनिर्णीत करने की अपनी अंतनिर्हित शक्ति के प्रयोग में उच्च न्यायालय में निहित व्यापक विवेकाधिकार को प्रभावित नहीं करता, और (ii) यद्यपि खर्चे के अधिनिर्णय न्यायालय के विवेकाधिकार के भीतर है किन्तु यह ऐसी शर्तों और निबंधनों के भीतर है जो विहित किया जाए और प्रवृत्त किसी विधि के उपबंधों के अधीन है, उद्धृत करने हेतु दो प्रतिस्पर्द्धी विचारों को निर्दि-ट किया, इसलिए संहिता के विनिर्दि-ट उपबंध अर्थात् धारा 35 और 35क आदि के प्रतिकूल अंतनिर्हित शक्तियों का प्रयोग नहीं किया जा सकता है । इस बाद वाले मत को "अधिक ठोस मत" माना गया । ऐसा कहते हुए, विद्वान न्यायाधीशों द्वारा निम्नलिखित संगत मत व्यक्त किए गए :

> "इसके अतिरिक्त, धारा 35क के उपबंध यह इंगित करने वाले प्रतीत होते हैं कि जहां वाद या मुदकमेबाजी खिजाऊ है वहां अनुकरणीय खर्च की वाह्य सीमा 3000/- रुपए से अधिक नहीं होगी जो नियमित खर्च के अलावा अधिनिर्णीत की जा सकती है । यह भी उल्लेखनीय है कि पचास हजार या एक लाख रुपए के भारी खर्च का आदेश समान्यतः रिट कार्यवाहियों और लोकहित वादों में ही अधिनिर्णीत किया जाता है न कि ऐसे सिविल वादों में जिसको धारा 35 और 35क लागू होती है । प्रशासनिक विधि वि-ायों में खर्च उद्ग्रहण करने से संबंधित सिद्धांतों और व्यवहारों को संहिता द्वारा शासित सिविल मुकदमेबाजी के संबंध में यंत्रवत आयातित नहीं किया जा सकता है ।"

3.4 ऐसा मत जिसे उपरोक्त मामले में ठोस माना गया था, को

संजीव कुमार जैन के हाल की मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दोहराया गया । धारा 35 के पूर्ववर्ती पद "......के अधीन" का उल्लेख करते हुए, न्यायालय ने यह अधिकथित किया कि (" यदि संहिता या किसी नियम में विहित कोई शर्त या परिसीमा है तो स्प-टतः न्यायालय खर्चे अधिनिर्णीत करने में उन्हें उपेक्षा नहीं कर सकती ।") इसके अतिरिक्त, **संजीव कुमार जैन** के उसी मामले में उच्चतम न्यायालय ने **अशोक कुमार मित्तल** वाले पूर्व मामले में जो कुछ कहा गया था, को ध्यान में रखते हुए, धारा 35 के अनुसार अर्थात् घटना के पश्चात् खर्च और खर्च अधिनिर्णीत न करने के लिए भी कारण देते हुए खर्च अधिनिर्णीत करने के व्यवहार की विकसित करने की आवश्यकता पर बल दिया । अन्यथा, यह इंगित किया गया कि खर्चे के उपबंधों का उद्देश्य विफल हो जाएगा, तब यह कहा गया :

> "मामलों की कार्यवाही और बचाव समय लेने वाली और खर्चीली प्रक्रिया है । ऐसे वादी/याची/अपीलार्थी को जिसे प्रत्यर्थी/प्रतिवादी के अवैध कार्यों या ऐसे अधिकार के प्रत्याख्यान जिसका वह हकदार है के कारण न्यायालय जाना पड़ा है, यदि वह सफल होता है, विधि के अनुसार उसके खर्चों की प्रतिपूर्ति करनी चाहिए । इसी प्रकार, ऐसे प्रतिवादी/प्रत्यर्थी जिसे अनावश्यक या तंग करने के लिए न्यायालय में खींचा जाता है, यदि वह सफल हो जाता है, को विधि के अनुसार उसके खर्चों की प्रतिपूर्ति करनी चाहिए । इसके अतिरिक्त, यह भी सुमान्यताप्राप्त है कि खर्चों और प्रतिकरात्मक खर्चों का उद्ग्रहण मिथ्या या खिजाऊ, मुकदमों को रोकने का एक प्रभावी मार्ग है ।"

3.5 अगला विनिश्चय जो ध्यान दिए जाने योग्य है वह **बिनोद सेठ** (पूर्वोक्त) वाला मामला है । न्यायालय ने सिविल मामलों में खर्चों से संबंधित व्याप्त नियमों और व्यवहारों में खामियों को उजागर किया :

> "संहिता की धारा 35 में संपत्ति में खर्चें के अधिनिर्णय और किस सीमा तक ऐसा खर्च संदत्त किया जाए का विवेकाधिकार निहित है । दिल्ली में प्रवृत्त नियमों सहित खर्च लगाने वाले अधिकांश

नियम यह उपबंध करते है कि प्रत्येक पक्षकार को यह उल्लेख करते हुए ; (क) संदत्त न्यायालय फीस ; (ख) खर्च की गई प्रक्रिया फीस ; (ग) साक्षियों के व्यय ; (घ) अधिवक्ता की फीस, और ऐसे अन्य न्यायालय खर्च के साथ निर्णय के ठीक पश्चात् खर्च का विल फाइल किया जाना चाहिए । यह उपबंध करता है कि प्रसामान्यत खर्च घटना के अनुसार प्रदान किया जाना चाहिए और न्यायालय को खर्च किसके द्वारा दिया जाए या किसी अन्य रकम से जो नियमों के अधीन अनुज्ञेय हों या जैसा न्यायालय द्वारा निदेश दिया जाए, अवधारित करने की पूरी शक्ति होगी । हमें यह बताया गया है कि दिल्ली में ऐसे वादों की बाबत जिसका मूल्य 5 लाख रपए से अधिक है, अधिवक्ता फीस 14,500/- रुपए और 5 लाख से अधिक के मूल्य पर रकम का 1% और अधिकतम 50,000/- रुपए के अधीन है । वादकारियों और अधिवक्ताओं के बीच व्याप्त यह मत है कि संहिता में उपबंधित और न्यायालयों द्वारा अधिनिर्णीत खर्च वादकारी द्वारा उपगत व्ययों के संबंध में पूरी तरह न तो प्रतिपूर्ति करता है और न ही क्षतिपूर्ति करता है ।"

3.6 उच्चतम न्यायालय ने इस बात पर ध्यान देते हुए कि संहिता की धारा 35 अधिनिर्णीत किए जाने वाले खर्च की मात्रा पर कोई अधिकतम सीमा अधिरोपित नहीं करती, यह उपदर्शित किया कि धारा 35 का उद्देश्य निम्नलिखित दो उपायों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है , (i) सभी मामलों में परिणाम के अनुसार न्यायालयों द्वारा खर्च का उद्ग्रहण कर (खर्च न लाए जाने पर कारण बताया जाए) ; और (ii) वाणिज्यिक मुकदमे में इसे और यथार्थ बनाने के लिए खर्च के कराधान से संबंधित व्यवहार के सिविल नियमों में समुचित संशोधन कर ।

3.7 आगे, धारा 35क और 35ख के संबंध में उच्चतम न्यायालय ने **बिनोद सेठ** वाले मामले में निम्नलिखित मत व्यक्त किया :

"मिथ्या या खिजाऊ, दावे या प्रतिवादों की बाबत (संहिता की धारा 35क) प्रतिकरात्मक खर्चे से संबंधित उपबंध वस्तुतः मंहगाई

के कारण निरर्थक और अप्रभावी हो गए हैं । उक्त धारा के अधीन निरर्थक और खिजाऊ, मुकदमों के लिए प्रतिकरात्मक खर्च प्रदान किए जाने के अधिकतम सीमा 3000/- रुपए है । सलेम एडवोकेट बार एशोसिएशन (ii) (पूर्वोक्त) वाले मामले में व्यक्त मतों को ध्यान में रखते हुए वास्तविक पुनरीक्षण की अपेक्षा है । विलंब कारित करने के लिए खर्च का उपबंध करने वाली 35ख का कभी-कभार अवलंब लिया जाता है । विलंब कम करने के लिए नियमित रूप से इसका प्रयोग किया जाना चाहिए ।"

3.8 अब हम **संजीव कुमार जैन** (2011) वाले नवीनतम मामले को निर्दि-ट करेंगे । उस मामले में, उच्चतम न्यायालय ने इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या किसी व्यादेश वाद में अस्थायी व्यादेश को नि-प्रभवी बनाने के आदेश के विरुद्ध की गई अपील को खारिज करते समय उच्च न्यायालय द्वारा खर्चे के रूप में अधिनिर्णीत 45 लाख रुपए रकम कायम रखे जाने योग्य था । उक्त वाद कुछ वाणिज्यिक मुकदमे की बाबत था । उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थी द्वारा अपील में अधिवक्ता की फीस को उपगत किए जाने पर विचार किया । उच्च न्यायालय के इस आदेश को उच्चतम न्यायालय द्वारा अपास्त किया गया और माननीय उच्चतम न्यायालय ने आदेश दिया कि "अपीलार्थी प्रत्यर्थी को अनुकरणीय खर्च के रूप में नियमों के अनुसार और 3000/- रुपए उच्च न्यायालय के समक्ष अपील के खर्च के रूप में अदा करेगा ।" निर्णय में अधिकथित सिद्धांतों और उसके तर्काधारों पर धयान देना सुसंगत है ।

3.9 उच्चतम न्यायालय ने **संजीव जैन** (2011) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि भारी खर्च अधिनिर्णीत करने वाला उच्च न्यायालय का आदेश सिविल वादों में खर्चे के अधिनिर्णय वाले दिल्ली उच्च न्यायालय नियम के साथ सिविल प्रक्रिया संहिता के विद्यमान उपबंधों के आलोक में कायम रखे जाने योग्य नहीं था । उच्चतम न्यायालय ने ऐसे सुसंगत नियम को निर्दि-ट किया जो अध्याय 23 के अनुसूची में विहित मानदंड से अनधिक रकम तक अधिवक्ता फीस लिए जाने का व्यादेश देता है । तब उच्चतम न्यायालय ने विधिक स्थिति को इस प्रकार स्प-ट किया :

"अतः, न्यायालय उस मानदंड से अधिक खर्च अधिनिर्णीत नहीं कर सकता जो नियमों की अनुसूची में विहित था । ऐसा करना नियमों के प्रतिकूल होगा । यदि यह नियमों के प्रतिकूल था तो यह धारा 35 के भी प्रतिकूल था जो इसे ऐसी शर्तों और परिसीमाओं के अधीन बनाता है जो विहित की जाए और तत्समय प्रवृत्त विधि के उपबंधों के अधीन हो । अतः, हमारा यह मत है कि खर्च के रूप में मुकदमे के व्ययों को प्रदान करने के लिए पक्षकारों की मात्र सहमति मांग कर उच्च न्यायालय किसी सिविल वाद में अंतरिम आदेश से संबंधित अपील में खर्च के रूप में कोई रकम मानकर अधिनिर्णीत करने की प्रक्रिया को अपना सकता है और न ही 45,28,000/- रुपए की रकम अधिनिर्णीत करने की प्रक्रिया आरंभ कर सकता है । जहां हम, यथार्थ खर्च अधिनिर्णीत करने को प्रोत्साहित करना चाहते हैं किंतु वह विधि के अनुसार होना चाहिए । यदि विधि वास्तविक खच अधिनिर्णीत करने की अनुज्ञा नहीं देती तो स्प-टतः न्यायालय वास्तविक खर्च अधिनिर्णीत नहीं कर सकते । जब इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि वह वास्तविक यथार्थ खर्च अधिनिर्णीत करने के पक्ष में है तो इसका यह अभिप्राय है कि वास्तविक यथार्थ खर्च का उपबंध करने के लिए सुसंगत नियमों का संशोधन किया जाए । जैसा कि इस समय लागू विधि है, "वास्तविक खर्च" अधिनिर्णीत करने का कोई उपबंध नहीं है और खर्च का अधिनिर्णय धारा 35 द्वारा विहित परिसीमा के भीतर करना होगा ।"

3.10 उच्चतम न्यायालय ने यह इंगित करते समय कि उच्च न्यायालय **सलेम एडवोकेट बार एशोसिएशन** वाले मामले में व्यक्त मतों से भ्रमित हो गया, इस प्रकार मत व्यक्त किया :

"इस न्यायालय ने कुल मिलाकर यह कहा था कि समुचित संशोधन कर नियमों में वास्तविक युक्तियुक्त खर्च का उपबंध किया जाना चाहिए । वस्तुतः, इस न्यायालय के विनिश्चय के पैरा 37 का अगला ही वाक्य यह है कि उच्च न्यायालयों को इन पहलुओं की परीक्षा करनी चाहिए और जहां कहीं आवश्यक हो

अपेक्षित नियम, विनियम या व्यवहार निदेश देना चाहिए । वास्तविक यथार्थ खर्च का उपबंध करने लिए उच्च न्यायालयों से अपने नियमों और विनियमों में संशोधन करने की अपेक्षा थी जहां, उन्होंने ऐसा उपबंध न किया हो .....। सलेम एडवोकेट बार एशोसिएशन के विचार नियमों में इस प्रकार संशोधन करने का निदेश है जिससे कि वास्तविक यथार्थ खर्च का उपबंध किया जा सके और विद्यमान नियमों की उपेक्षा न हो । अतः सलेम एडवोकेट बार एशोसिएशन के विनिश्चय से एसे खर्चों के अधिनिर्णीत किए जाने को न्यायोचित ठहराने में कोई सहायता नहीं मिलती । नियम अनुसूची के अनुसार ही खर्च के अधिनिर्णीत किए जाने की अनुज्ञा देते हैं ।"

3.11 उच्चतम न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीशों में तब "वास्तविक यथार्थ खर्च" की अवधारणा को निम्नलिखित शब्दों में स्प-ट किया :

"वास्तविक यथार्थ खर्च को ऐसे खर्च के साथ सह-संबंध होना चाहिए जो यथार्थ और व्यावहारिक है । स्प-टतः यह ऐसे पक्षकारों द्वारा मनमौजी और सनकपन से व्यय को निर्दि-ट नहीं किया जा सकता जो उच्च प्रभार वाले अधिवक्ताओं को लगाने का शौक रखते हैं । यदि उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए तर्क को स्वीकार किया जाए तो हारने वाले पक्षकार को न केवल वाद की वि-ाय-वस्तु के प्रतिनिर्देश से बल्कि दूसरे पक्ष का भुगतान करने की हैसियत के प्रतिनिर्देश से खर्च अदा करना चाहिए । आइए हम 1 लाख रुपए की वसूली के वाद का उदाहरण लें । यदि कोई धनी वादी अपने पक्षकथन को और प्रभावी ढंग से रखना चाहता है तो वह ऐसे अधिवक्ता को लगता है तो मात्र इस कारण 1 लाख रुपए लेता है क्योंकि यह एक वाणिज्यिक विवाद है । अस्थायी व्यादेश से संबंधित मामले में, मात्र इस कारण कि न्यायालय कई बार मामले का स्थगन करता है और एक पक्षकार प्रति सुनवाई 1 लाख रुपए से अधिक भुगतान कर अधिवक्ता लगाता है तो क्या दूसरे पक्षकार को ऐसा खर्च वहन करने के लिए कहा जाना चाहिए । प्रत्यर्थियों द्वारा फाइल खर्च मेमो यह दर्शाता है कि 45,28,000/- रुपए चार अधिवक्ताओं को दिया

> गया । यदि कोई धनी वादकारी एक अधिवक्ता के बजाय चार अधिवक्ता लगाता है तो क्या प्रतिवादी को चार अधिवक्ताओं की फीस अदा करनी चाहिए .... यदि वास्तविक खर्च अधिनिर्णीत किया जाना हो तो यह यथार्थ होनी चाहिए जिसका यह अभिप्राय है कि जो एक "सामान्य" अधिवक्ता ऐसी प्रकृति के "सामान्य" मामले में प्रसामान्यतः ऐसे मामले में प्रभारित करता । स्थायी व्यादेश के लंबित वाद में अस्थायी व्यादेश के मंजूर किए जाने के विरुद्ध अपील में हारने वाले पक्षकार को 45,28,000/- रुपए देने का यंत्रवत आदेश देना अनापेक्षित और विधि के प्रतिकूल था । इसे कायम नहीं रखा जा सकता ।"

3.12 उच्चतम न्यायालय ने तब मोहन केस-फ्लो प्रबंधन नियम और सलेम एडवोकेट बार एशोसिएशन की मताभिव्यक्ति को निर्दि-ट किया कि उच्च न्यायालयों को विशे-कर उक्त मोडल नियमों के अनुसार नियम बनाने पर विचार करना चाहिए ।

3.13 उच्चतम न्यायालय ने यह टिप्पणी की कि यह सामान्य धारण सही नहीं कि मुकदमे से संबंधित न्यायालय फीस अधिक है । यह इंगित किया गया कि कुछ प्रवर्ग के वादों में जहां न्यायालय फीस मूल्यानुसार है, के मामलों के सिवाय उससे उद्‌भूत होने वाले अधिकांश वादों/याचिकाओं और अपीलों में नाममात्र की न्यायालय फीस नियत है और दशियों पहले विहित नियत फीस में कोई परिविर्तन नहीं हुआ है । उच्चतम न्यायालय ने नियत न्यायालय फीस के सावधिक पुनरीक्षण की आवश्यकता को इंगित किया और उच्चतम न्यायालय के समक्ष मामलों में संदेय अल्प न्यायालय फीस पर टिप्पणी की । न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि कम से कम वाणिज्यिक मुकदमों में खर्च न्यायालयों द्वारा बिताए गए समय के अनुरूप होना चाहिए । ऐसा कोई कारण नहीं है कि विवाचन मामलों, कंपनी मामलों, कर मामलों आदि की बाबत जिसमें भारी रकम अंतर्वलित रहती है, नाममात्र की नियत फीस एकत्र की जाए । आगे यह मत व्यक्त किया गया :

> "जहां हम ऐसे मामलों में मूल्य के प्रतिनिर्देश से मूल्यानुसार फीस की वकालत नहीं कर हरे हैं वहां कम से कम अंतवर्लित

खर्च के तत्प्रतितत कुछ प्रकार के मामलों में पर्याप्त उच्च नियत फीस ली जानी चाहिए ।"

3.14 उच्चतम न्यायालय ने नियमों की अनुसूची में उपबंधित अधिवक्ता फीस के पुनरीक्षण की आवश्यकता पर निम्नलिखित शब्दों में बल दिया :

"नियमों की अनुसूची में उपबंधित अधिवक्ता फीस में पुनरीक्षण करने की समानतः अत्यावश्यकता है जिसमें से अधिकांश प्राचीनतम है और फीस के लागू दरों से उनका कोई सह-संबंध नहीं है । धनवादों विनिर्दि-ट अनुपालनवादों और अन्य वादों की बाबत जहां मूल्यानुसार न्यायालय फीस संदेय है, अधिवक्ता फीस भी प्रायः मूल्यानुसार है । हम ऐसे अन्य मामलों के प्रति अधिक चिन्तित है जिन मुकदमों की संख्या बहुतायत में है जहां नियत अधिवक्ता फीस विहित है । दिल्ली में, किसी कार्यवाही (अन्य वादों से भिन्न जहां मूल्यानुसार न्यायालय फीस संदेय है) की बाबत अधिकतम फीस जो अधिनिर्णीत की जा सकती है, 2000/- रुपए है और पैमाने की अपीलों के लिए यदि वह मूल वादों को संदेय है ।" (एवमेव)

3.15 वास्तविक यथार्थ खर्च दिलाने में अपनाए जाने वाले दृ-टिकोण को आगे इस प्रकार स्प-ट किया गया :

"खर्च को "वास्तविक और यथार्थ" बनाने का उद्देश्य खर्च के अधिनिर्णय को सरल और कारगर बनाना तथा निर्धारण की प्रक्रिया को सहज बनाना है । जहां तक अधिवक्ता फीस का संबंध है, उपगत व्यय (उदाहरण के लिए साक्षियों की यात्रा व्यय, प्रभावित प्रतियां आदि अभिप्राप्त करने का खर्च) की बाबत वास्तविक व्यय का सुनिश्चित किया जाना आवश्यक है, "यथार्थता" के बजाय "वास्तविकता" पर बल दिया जाना चाहिए । न्यायालयों को नियुक्त अधिवक्ताओं की संख्या या उन्हें प्रतिदिन संदत्त उच्च दर फीस से कुछ लेना देना नहीं है । इस समय, अधिवक्ता फीस यथार्थ सामान्य एकल फीस होनी

चाहिए ।"

3.16 उच्चतम न्यायालय ने तब महत्वपूर्ण मत व्यक्त किया कि "कुछ पश्चिमी देशों में खर्चे की निर्धारण की स्कीम/प्रक्रिया भारतीय दशाओं के प्रतिनिर्देश से समुचित नहीं हो सकती है ।" आगे यह मत व्यक्त किया गया :

> "पश्चिमी देशों में खर्चों के कराधान की प्रक्रिया का विकास एक विस्तृत और जटिल प्रक्रिया है और ऐसे दृ-टांतों की कमी नहीं है जहां अधिनिर्णीत खर्चा स्वयं मुकदमें में अंतवर्लित रकम से अधिक रहा है । भारतीय परिस्थितियों का ध्यान में रखते हुए "वास्तविक खर्च" के अवधारण के लिए उतना समय बिताना संभव या व्यवहार्य नहीं है जो अपेक्षित है जबकि हमारे पास मेरिट पर मामलों के निपटाने का भी समय नहीं है । यदि न्यायालय खर्च के निर्धारण की विस्तृत प्रक्रिया के लिए अपेक्षित समय निकालेंगे तो इससे मामला लंबित होने की स्थिति में वृद्धि हो सकती है ।"

3.17 सावधिकतः सुसंगत नियमों का संशोधन कर यथार्थ अधिवक्ता फीस अधिनिर्णीत करने का उपबंध करने की आवश्यकता पर बल देते हुए वास्तविक यथार्थ खर्च के उद्ग्रहण न करने की गंभीर कमी को निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया गया है :

> "ऐसा कोई वादकारी जो मुकदमा आरंभ करता है, कुछ समय पश्चात् बिलंब और एकत्रित खर्च का वहन करने में असमर्थ होकर दावा त्याग देता है और दूसरे पक्ष के प्रति अध्यर्पण करता है या ऐसे समझौते के लिए सहमत होता है जो कुछ हद तक ऐसे लेनदार के अनुकूल है जो ऋण वसूल करने में समर्थ नहीं है, ऋण माफ करता है । यह तब होता है जब खर्च ज्यादा हो जाता है और वह महसूस करता है कि यदि सफल हो जाता है तो भी वह वास्तविक खर्च नहीं पाएगा । यदि यह प्रायः होता रहे तो नागरिक सिविल न्याय प्रणाली में अपनी आस्था खो देंगे ।"

3.18 उच्चतम न्यायालय ने निर्णय के पैरा 23 से 29 पर स्प-टतः "माध्यस्थम मामलों में खर्च" वि-ाय पर विचार किया । तथापि, हम इस पहलू पर विचार नहीं कर रहे हैं क्योंकि यह सुसंगत है कि माध्यस्थम और सुलह अधिनियम, 1996 के प्रस्तावित संशोधनों पर विधि मंत्रालय द्वारा विचार किया जाए ।

3.19 तब, धारा 35क (प्रतिकरात्मक खर्चे) पर उच्चतम न्यायालय द्वारा व्यक्त मतों पर ध्यान देने की आवश्यकता है । (**संजीव कुमार जैन** बनाम **रघुवीर सरल चैरिटेबल ट्रस्ट)** वाले मामले के निर्णय के सुसंगत पैरे को यहां उद्धृत किया जा रहा है :

> "इस समय, मिथ्या और खिजाऊ, दावों के संबंध में प्रतिकरात्मक खर्चे के रूप में अधिनिर्णीत की जाने वाली अधिकतम रकम 3000/- रुपए है । जब तक प्रतिकरात्मक खर्च को यथार्थ स्तर तक नहीं लाया जाता, तब तक वर्तमान मानकों द्वारा बेढंगे रूप से छोटी रकम का उद्ग्रहण करने को प्राधिकृत करने वाले वर्तमान उपबंध ऐसे मुकदमे को हतोत्साहित करने के बजाय मिथ्या और खिजाऊ दावों को प्रोत्साहित करेंगे । इस समय न्यायालयों ने वस्तुतः कोई प्रतिकरात्मक खर्च अधिनिर्णीत करना त्याग दिया है क्योंकि 3000/- रुपए की ऐसी छोटी राशि के प्रदान किए जाने से कोई खास अंतर नहीं पड़ता । हमारा यह मत है कि प्रतिकरात्मक खर्चे की बाबत अधिकतम सीमा कम से कम 1,00,000/- रुपए होनी चाहिए ।"

3.20 इस अवसर पर यह उल्लेखनीय है कि न्यायालय के समक्ष विधि आयोग द्वारा किए गए लिखित निवेदन में आयोग ने 1 लाख रुपए की अधिकतम सीमा तक बढ़ाने का सुझाव दिया और कतिपय अन्य संपूरक निदेशों का भी सुझाव दिया है जो धारा 35क के अधीन खर्चा अधिनिर्णीत करते समय समुचित रूप से दिए जा सकते हैं । हम यहां इसके पश्चात् उन ब्यौरों का उल्लेख करेंगे ।

3.21 धारा 35क से संबंधित उच्चतम न्यायालय की अन्य महत्वपूर्ण

मताभिव्यक्ति पैरा 15 पर है :

> "15. हमें यह भी ध्यान देना चाहिए कि "प्रतिकरात्मक खर्च" के रूप में धारा 35क के अधीन अधिनिर्णय खर्चे का विवरण यह संकेत देता है कि दंडात्मक के बजाय क्षतिपूर्तिकारी है । मिथ्या या खिजाऊ दावों के लिए अधिनिर्णीत खर्च दंडात्मक होना चाहिए, न कि मात्र प्रतिकरात्मक । वस्तुतः प्रतिकरात्मक खर्च ऐसा कुछ है जो स्वयं धारा 35ख और धारा 35 में अनुध्यात है । अतः विधानमंडल धारा 35क के अधीन "दंडात्मक खर्च" के अधिनिर्णय पर विचार करे ।

3.22 एक अन्य हाल के मामले में जिसमें उच्चतम न्यायालय द्वारा खर्च के अधिनिर्णय से संबंधित कतिपय सिद्धांत अधिकथित किए गए है, **राम रामेश्वरी देवी** बनाम **निर्मला देवी**[1] वाला मामला है । उच्चतम न्यायालय की सुसंगत मताभिव्यक्तियां नीचे दी जा रही हैं :

> "52ग. वास्तविक, यथार्थ या उचित खर्चे का अधिरोपण और/या अभियोजन से कूटरचित तथा जालसाजी दस्तावेजों को पेश करने की प्रवृत्ति को नियंत्रित करने में काफी वक्त लगेगा । भारी खर्चे का अधिरोपण पक्षकारों द्वारा अनावश्यक स्थगनों को भी नियंत्रित करेगा । समुचित मामलों में न्यायालय कार्यवाही करने का आदेश देने में विचार कर सकेंगे अन्यथा न्यायिक कार्यवाहियों की शुद्धता और पवित्रता बनाए रखना संभव नहीं हो सकेगा ।"

3.23 रामरामेश्वरी देवी वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने आगे यह कहा :

> "54. खर्चे अधिरोपित करते समय हमें व्यावहारिक यथार्थताओं पर विचार करना चाहिए और विभिन्न न्यायालयों के समक्ष प्रतिवादियों या प्रत्यर्थियों ने मुकदमा लड़ने में वास्तविक रूप से जो खर्च किया उसके प्रति व्यावहारिक होना चाहिए । हमें

---

[1] (2011) 8 एस. सी. सी. 249.

अधिवक्ताओं और अन्य प्रकीर्ण व्यय जो प्रतिशपथपत्र के प्रारूपण और फाइल करने, टंकण, फोटो प्रति करने न्यायालय फीस आदि के प्रति प्रकीर्ण प्रभारों के लिए उपगत किए गए हैं, के लिए लागू फीस संरचना पर भी व्यापक रूप से विचार करना चाहिए ।

55. खर्च अधिरोपित करते समय इस अन्य कारक को नहीं भूलना चाहिए कि कितने समय से प्रतिवादी या प्रत्यर्थी विभिन्न न्यायालयों में मुकदमे का प्रतिवाद करने या बचाव करने के लिए मजबूर थे । इस मामले में अपीलार्थियों ने विभिन्न न्यायालयों में बिल्कुल निरर्थक और बेईमान मुकदमे में चार दशकों तक प्रत्यर्थियों को तंग किया । अपीलार्थियों ने पिछले 40 व-र्ों तक विभिन्न न्यायालयों का न्यायिक समय न-ट किया ।

56. इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को समग्रता से विचार करने पर हम सुआधारित अपेक्षित आदेश/निर्णय में कोई कमी नहीं पाते । परिणामतः इन अपीलों को खर्चे के साथ खारिज किया जाता है जिसका हिसाब हम 20,00,00/- रुपए (दो लाख रुपए मात्र) लगाते हैं । हम घोर व्यथा के कारण नहीं बल्कि मूल सिद्धांत का पालन करते हुए खर्च अधिरोपित कर रहे हैं कि दो-ाकर्ता को निरर्थक मुकदमे से फायदा नहीं होना चाहिए ।"

3.24 उपरोक्त उद्धृत अंतिम वाक्त के एकमात्र विचार का अर्थान्वयन निरर्थक मुकदमा पाए जाने वाले मामले में उच्च न्यायालय नियमों के साथ पठित सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 35क के होते हुए भी खर्चे के किसी रकम का अधिनिर्णय करने के लिए न्यायालयों के पूर्णाधिकार के रूप में नहीं लिया जा सकता है । **संजीव कुमार जैन** और **बिनोद सेठ** (पूर्वोक्त) वाले मामलों में उच्चतम न्यायालय का विनिश्चय कानूनी उपबधों को ध्यान दिए बिना निरर्थक मुकदमे में खर्चे अधिनिर्णीत करने के सिविल न्यायालयों के विवेकाधिकार से इनकार करता है । तथापि, जहां तक उच्चतम न्यायालय का संबंध है, समुचित खर्च या सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंधों द्वारा जो अनुध्यात है, और से काफी अधिक

खर्च अधिनिर्णीत करने की शक्ति को उच्चतम न्यायालय में निहित पूर्ण शक्तियों में ढूंढा जा सकता है । इसीलिए, सिविल मामलों में उच्चतम न्यायालय द्वारा भारी खर्च अधिनिर्णीत किए जाने को **संजीव कुमार जैन** वाले मामले में न्यायोचित ठहराया गया है । न्यायालय ने स्प-ट किया :

> "वस्तुतः, इस न्यायालय ने कई मामलों में यथार्थ खर्च के संदाय का निदेश दिया है । किन्तु यह न्यायालय उच्चतम न्यायालय नियम, 1966 या संविधान के अनुच्छेद 142 को ध्यान में रखते हुए जिसके अधीन इस न्यायालय को ऐसे आदेश करने की शक्ति है जो पक्षकारों के बीच पूर्ण न्याय करने के लिए आवश्यक हो, के अधीन निहित विवेकाधिकार के कारण ऐसा कर सकता है ।"

4. सिविल प्रक्रिया संहिता और लागू नियम और पद्धतियों के अधीन खर्चे से संबंधित उपबंध और सुझाए गए परिवर्तन

4.1 खर्चे से संबंधित मुख्य उपबंध धारा 35, 35क और 35ख में पाए जाते हैं । आदेश 20क और आदेश 25 अन्य सहबद्ध उपबंध है जो ध्यान देने योग्य है । हम उन पर क्रमानुसार विचार करेंगे :

4.2 धारा 35 ("खर्चे")

(क) धारा 35 के अधीन खर्चे का लक्ष्य सफल पक्षकार को युक्तियुक्त मुकदमे के व्यय की प्रतिपूर्ति करना है । विभिन्न शी-र्षों के अधीन अधिनिर्णीत किए जाने वाले खर्च यथार्थ और वादकारी द्वारा अनुमित उपगत किए गए व्यय के ठीक समतुल्य होने चाहिए ।

(ख) धारा 35 दो सिद्धांतों का अधिकथन करती है (1) सभी वादों में घटना के खर्चे न्यायालय के विवेकाधिकार पर होना चाहिए । न्यायालय को यह अवधारित करने की पूरी शक्ति होगी कि किसके द्वारा या किसकी संपत्ति में से और किस सीमा तक ऐसे खर्चे संदत्त किए जाने हैं । (2) जहां न्यायालय यह निदेश देती है कि घटना के लिए खर्चा नहीं दिया जाएगा वहां न्यायालय द्वारा विनिर्दि-ट कारण अभिलिखित

किया जाना चाहिए ।

(ग) धारा 35(1) यह उपबंध करती है कि "ऐसी शर्तों और परिसीमाओं जो विहित किए जाए और तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के उपबंधों के अधीन, वादों के सभी और आनु-ांगिक खर्चे न्यायालय के विवेकाधिकार पर होगा ।" उपधारा आगे यह उपबंध करती है कि न्यायालय में किसके द्वारा या किस संपत्ति में से और किस सीमा तक ऐसे खर्चे संदत्त किए जाएं, का अवधारण करने की पूरी शक्ति होगी ।

(घ) उपधारा (2) यह अधिकथित करती है : जहां न्यायालय यह निदेश देता है कि खर्चे परिणाम के अनुसार नहीं दिए जाएंगे वहां न्यायालय अपने कारण लेखबद्ध करेगा ।"

> "उपधारा (2) इस विधायी नीति का सूचक है कि साधारणतया खर्चा ऐसे पक्षकार को अधिनिर्णीत किया जाएगा जो सफल होता है और यदि यह अन्यथा हो तो संसद न्यायालय से यह अपेक्षा करती है कि खर्चा मंजूर करने का कारण बताए । प्रायः यह नियम कि खर्चा परिणाम के अनुसार दिया जाएगा, का भंग होता है । इनमें से अधिकांश मामलों का निपटान "खर्चे के संबंध में कोई आदेश नहीं" या "पक्षकार अपने निजी खर्चे वहन करेंगे" कहकर किया जाता है । जब कोई न्यायालय, विशे-ाकर वरि-ठ न्यायालय खर्चा नामंजूर करता है या "खर्चे के संबंध में कोई आदेश नहीं" कहा जाता है तो कारण कभी-कभार अभिलिखित किए जाते हैं । ऐसे गूढ़ निदेशों में ऐसी कोई बात नहीं होती जो न्यायालय के विवेक का मार्गदर्शन कर सकें कि क्यों खर्चा नामंजूर किया जा रहा है । ऐसे भी दृ-टांत हैं जहां उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय कार्यवाही के पक्षकार से भिन्न निकाय को खर्चा संदत्त किए जाने का निदेश देते हैं, उदाहरण के लिए, किसी पूर्त संगठन या विधिक सेवा प्राधिकरण जिस पद्धति को कुछ निर्णयों में अस्वीकार किया गया है जबकि अन्य मामलों में ऐसा किया गया है । माननीय उच्चतम न्यायालय के ऐसे निर्णयों में खर्चे अधिनिर्णीत किए गए हैं या स्वीकार नहीं किए गए हैं, किसी आधारभूत सिद्धांत का कोई संकेत नहीं देते और उससे किसी मार्गदर्शक सिद्धांत या तर्क का निगमन नहीं किया जा

सकता । ऐसे निदर्शी मामले जो इस दलील को सिद्ध करते हैं, उपबंध-I पर दर्शाए गए हैं ।

(ङ) खर्चे मुकदमे के पक्षकार को उसके द्वारा उपगत व्ययों की युक्तियुक्त प्रतिपूर्ति के लिए आशयित हैं । अपने अधिकारों को प्रमाणित करने के लिए मुकदमे का अवलंब लेने वाला या दूसरे पक्ष द्वारा किए गए दो-ा को दूर करने की ईप्सा करने वाला पक्षकार या अनावश्यक रूप से न्यायालय में घसीटे जाने वाला पक्षकार अपने द्वारा उपगत कम से कम युक्तियुक्त व्यय वापस पाने में सक्षम हो जब वह मामले में सफलता पाए । इसका यह आशय है कि अधिनिर्णय खर्चे की मात्रा मुकदमे के खर्च को पूरा करने के लिए यथार्थ और युक्तियुक्तः पर्याप्त होना चाहिए ।

(च) **सलेम एडवोकेट बार एसोसिएशन** बनाम **भारत संघ** [(2005) 6 एस. सी. सी. 344] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह उल्लेख किया कि "दुर्भाग्यवश, पक्षकारों को अपने निजी खर्चे वहन करने का निदेश देना एक व्यवहार हो गया है" और जो खर्चा अधिनिर्णीत किया जाता है, साधारणतः यह यथार्थ नहीं होता है बल्कि नाममात्र का होता है । धारा 35(2) को निर्दि-ट करते हुए, न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि "जब धारा 35(2) यह उपबंध करती है कि खर्चे परिणाम के अनुसार दिए जाएंगे, यह विवक्षित है कि खर्चे ऐसे होने चाहिए जो सफल पक्षकार द्वारा युक्तियुक्त रूप से उपगत किए गए हों .... [और वह] खर्चा सफल पक्षकार द्वारा बिताए गए समय, परिवहन और निवास यदि कोई है, के खर्चे या न्यायालय फीस, अधिवक्ता फीस, टंकण और मुकदमे से संबंधित अन्य खर्चे के अलावा कोई अन्य आनु-ांगिक खर्चे सहित वास्तविक युक्तियुक्त खर्चा होना चाहिए । न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि [.......] उच्च न्यायालय इन पहलुओं की परीक्षा करे और अपेक्षित नियम, विनियम या व्यवहार निदेश दे जिससे कि पालन किए जाने के लिए अधीनस्थ न्यायालयों को समुचित मार्गदर्शक सिद्धांत उपलब्ध कराया जा सके ।"

(छ) उक्त निर्णय में, न्यायालय ने विधि आयोग के तत्कालीन

अध्यक्ष की अध्यक्षता वाली समिति द्वारा तैयार किए गए खर्चे के मोडल नियम को निर्दि-ट किया । "मोडल नियम" मार्गदर्शक सिद्धांतों की प्रकृति के हैं । विचारण न्यायालयों द्वारा खर्चे के अधिनिर्णय से संबंधित सुसंगत सिद्धांत इस प्रकार है :–

> "8. खर्चे :– जहां तक निर्णय के समय खर्चे के अधिनिर्णय का संबंध है, खर्चे का अधिनिर्णय साधारणतया आज्ञापक माना जाना चाहिए क्योंकि पक्षकारों को अपने निजी खर्चे वहन करने का निदेश देने के न्यायालयों के उदार बर्ताव से पक्षकार की न्यायालयों में निरर्थक मामले फाइल करने या निरर्थक या अनावश्यक मुद्दे उठाने की प्रवृत्ति बढ़ी है । प्रायः खर्चे आनु-ंगिक घटनाओं के अनुसार होने चाहिए । जहां कोई पक्षकार एक मुद्दा या बिन्दु पर अंततः सफल हो जाता है किन्तु कई अन्य मुद्दों या बिन्दुओं पर हार जाता है जो अनावश्यक रूप से उठाए गए थे तो खर्चा समुचित रूप से विभाजित किया जाना चाहिए । विशे-ा कारण बताए जाने चाहिए यदि खर्चे अधिनिर्णीत नहीं किए गए हैं । खर्चों का निर्धारण प्रवृत्त नियमों के अनुसार होना चाहिए । यदि किसी पक्षकार ने अयुक्तियुक्त रूप से कार्यवाही का समय बढ़ाया है तो न्यायाधीश को स्थगित तारीखों पर उपस्थिति के प्रयोजन के लिए उपगत व्ययों को हिसाब में लेते हुए अनुकरणीय खर्चे अधिरोपित करने के विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए विचार करना चाहिए ।" (पृ-ठ 396)

प्रथम अपील न्यायालय से संबंधित "मोडल नियम" इस प्रकार है :–

> "7 खर्चे :– खर्चे के अधिनिर्णय को साधारणतः आज्ञापक माना जाना चाहिए क्योंकि यह न्यायालयों के खर्चे अधिनिर्णीत करने के उदार बर्ताव के कारण है कि अपीलों में उठाए जाने वाले मुद्दे निरर्थक होते हैं या न्यायालय में निरर्थक अपीलें फाइल की जा रही हैं । खर्चे प्रायः घटनाओं के अनुसार होने चाहिए और अपील न्यायालय द्वारा खर्चे अधिनिर्णीत न करने के लिए कारणों का उल्लेख किया जाना चाहिए । यदि कोई पक्षकार अयुक्तियुक्त

कार्यवाही का समय बढ़ाता है तो न्यायाधीश को ऐसे खर्चे जो स्थगनों के समय अधिरोपित किए जा सकते हैं, को हिसाब में लेते हुए अनुकरणीय खर्चा अधिरोपित करने का विवेकाधिकार होगा ।" (पृ-ठ 398)

(ज) **बिनोद सेठ** बनाम **देविन्दर बजाज** [92010) 8 एस. सी. सी. 1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने खर्चे से संबंधित सुधार की आवश्यकता पर विचार किया । पैरा 45 में, न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि खर्चे के प्रभावी उपबंधों के अभाव से खिजाऊ, निरर्थक और अटकल सिविल मुकदमों की बाढ़ आ गई है । पैरा 48(ध) में खर्चे के उचित उपबंध द्वारा आशयित एक लक्ष्य प्राप्त करने के रूप में इसे निर्दि-ट किया गया है । इसे पुनः पैरा 53 में दोहराया गया है और न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि खर्चे का उपबंध प्रत्येक वादकारी के लिए आनुकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रिया अपनाने और विचारण आरंभ करने के पूर्व समझौता करने के प्रोत्साहन के रूप में होना चाहिए । उच्चतम न्यायालय ने यह उपदर्शित करते समय कि खर्चा सफल वादकारी को मुकदमे के लिए उसके द्वारा उपगत मुकदमा व्यय के लिए पर्याप्त क्षतिपूर्ति उपलब्ध कराने वाला होना चाहिए जो नाममात्र या अयथार्थ खर्चे के प्रतिकूल मुकदमे का पर्याप्त खर्चा अधिनिर्णीत करने को आवश्यक बनाता है, एक चेतावनी भी दी कि खर्चे से संबंधित उपबंध न्यायालयों और न्याय की पहुंच में बाधा डालने वाले नहीं होने चाहिए और किन्हीं भी परिस्थितियों में, खर्चे किसी नागरिक को उसके उचित या सद्भाविक दावे या कमजोर वर्ग के व्यक्ति जिसके अधिकार प्रभावित हुए है, को न्यायालयों में आवेदन करने के लिए निवारणकारी नहीं होने चाहिए । **इस अभिभावी विचार को हमेशा ध्यान में रखा जाना चाहिए ।**

(झ) **संजीव कुमार जैन** वाले मामले में, उच्चतम न्यायालय ने पैरा 8 में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :

"8. यद्यपि धारा 35 ऐसे खर्चे जो उद्ग्रहीत किए जो सकते हैं पर अधिकतम सीमा अधिरोपित नहीं करती और मामले में न्यायालयों के विवेकाधिकार प्रदान करती है, फिर भी, यह

> उल्लेख किया जाना चाहिए कि धारा 35 "ऐसी शर्तों और परिसीमाओं के अधीन रहते हुए जो विहित की जाए और तत्समय प्रवृत्त विधि के उपबंधों के अनुसार" शब्दों से आरंभ होती है । अतः, यदि संहिता या किसी नियम से कोई शर्त या परिसीमा विहित है तो न्यायालय प्रकटतः खर्चे अधिनिर्णीत करते समय उनकी उपेक्षा नहीं कर सकते ।"

न्यायालय ने पैरा 9 में यह मत व्यक्त किया कि यथार्थ खर्चों का अधिनिर्णय किए जाने को प्रोत्साहित करते समय, इसे विधि के अनुसार किया जाना चाहिए । न्यायालय ने कहा : "वर्तमान लागू विधि के अनुसार, 'वास्तविक खर्चा' अधिनिर्णीत करने का कोई उपबंध नहीं है और खर्चे का अधिनिर्णय धारा 35 द्वारा विहित परिसीमा के भीतर होना चाहिए ।" पैरा 10.1 में न्यायालय ने स्प-ट किया कि "धारा 35 वास्तविक यथार्थवादी खर्चे पर कोई निर्बंधन अधिरोपित नहीं करती । सामान्यतः, ऐसे निर्बंधन उच्च न्यायालय द्वारा बनाए गए नियमों द्वारा अधिरोपित किए जाते हैं ।"

(ञ) अतः, यह सुनिश्चित करने के लिए कि वास्तविक/यथार्थ खर्चे अधिनिर्णीत किए जाएं, उच्च न्यायालय द्वारा विरचित नियमों में अपेक्षित परिवर्तन किया जाना आवश्यक है । यह बहुत महत्वपूर्ण है कि **सलेम एडवोकेट बार एसोसिएशन** मामले और हाल ही के **संजीव कुमार जैन** वाले मामले में उच्चतम न्यायालय की मताभिव्यक्तियों के अनुपालन में यथार्थ खर्चा अधिनिर्णीत किया जाना सुनिश्चित करने के लिए विद्यमान नियमों का उपयुक्त पुनरीक्षण किया जाए । प्राचीन/अनुचित नियम अब भी कई राज्यों में लागू है यद्यपि सलेम एडवोकेट बार एसोसिएशन वाले मामले के पश्चात्, कुछ उच्च न्यायालयों ने नियमों का पुनरीक्षण किया । इसके अतिरिक्त, पुनरीक्षित और पुनरीक्षण पूर्व नियमों में कई दृ-टि से स्प-टता की कमी है और वे बोधगम्यतः ऐसे सुसंगत कारकों के बारे में नहीं है जिनकी अपेक्षा खर्चे को निश्चित किए जाने में होती है । हम इस पहलू पर थोड़ा बाद में और अधिक से विस्तार से विचार करेंगे । आयोग यह महसूस करता है कि विशे-ाकर संजीव कुमार जैन वाले मामले में अधिकथित सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए नियमों को और परि-कृत

करने की गुंजाइश है । फिर भी, अधिवक्ता फीस से संबंधित नियमों सहित नियमों का नियमित और सावधिकतः पुनरीक्षण होना चाहिए और बार के सदस्यों से सम्यक परामर्श किया जाना ऐसे कार्य का अभिन्न भाग होना चाहिए ।

4.2 आदेश 20क

(क) आदेश 20क "खर्चों के बारे में इस संहिता के उपबंधों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना" पद से आरंभ होता है । तब, यह ऐसे कतिपय मदों का उल्लेख करता है जिन्हें अधिनिर्णीत किए जाने वाले खर्चे में सम्मिलित किया जाए । उपवर्णित मद (i) वाद संस्थित करने से पूर्व किसी ऐसी सूचना के, जो विधि द्वारा दी जाने के लिए अपेक्षित है, दिए जाने के लिए उपगत व्यय (प्रकटतः, विधिक फीस) ; (ii) अभिवचनों के टंकण या मुद्रण पर व्यय ; (iii) न्यायालय अभिलेख के निरीक्षण का प्रभार ; (iv) किसी पक्षकार द्वारा साक्षियों को पेश करने के लिए उपगत व्यय चाहे वे न्यायालय के माध्यम से समन न किए गए हों ; और (v) अपील के ज्ञापन के साथ फाइल किए जाने वाले निर्णयों या डिक्रियों की प्रतियां अभिप्राप्त करने के लिए उपगत प्रभार । आरंभकारी पद "व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना" से संप्रेक्षित करने पर, ये मदें किसी भी प्रकार से व्यापक नहीं है । आदेश 20क के नियम 1 में उपवर्णित मदें कुल मिलाकर वे मदें हैं जो नियम बनाने वाले प्राधिकारी या न्यायालय के कराधान अधिकारी के ध्यान से बच सकते हैं । **सलेम एडवोकेट बार एसोसिएशन** (पूर्वोक्त) वाले मामले में, उच्चतम न्यायालय ने आदेश 20क में उपवर्णित खर्चे को शामिल करते हुए खर्चे के कतिपय मदों का उल्लेख किया । निम्नलिखित पैरा ध्यातव्य है :

> "खर्चा सफल पक्षकार द्वारा बिताए गए समय, परिवहन और निवास के खर्चे, यदि कोई है, या न्यायालय फीस, अधिवक्ता फीस, मुकदमे से संबंधित टंकण और अन्य खर्चे सहित वास्तविक युक्तियुक्त खर्चा होना चाहिए । उच्च न्यायालय इन पहलुओं की परीक्षा करने के लिए स्वतंत्र है और जहां कहीं आवश्यकता हो अपेक्षित नियम, विनियम और व्यवहार निदेश दे जिससे कि

अनुपालन के लिए अधीनस्थ न्यायालयों को समुचित मार्गदर्शक सिद्धांत उपलब्ध कराया जा सके ।

(ख) सुस्प-टतः, **संजीव कुमार जैन** (पूर्वोक्त) वाले मामले में प्रयुक्त पद "वास्तविक युक्तियुक्त/यथार्थ खर्च" का अभिप्राय यह विचार संप्रेनित करने के लिए है कि ...... खर्चे कतिपय मदों की बाबत वास्तविकताओं पर आधारित होने चाहिए और दूसरा, अधिनिर्णय खर्चे का मानदंड यथार्थ होना चाहिए न कि कल्पनात्मक या अल्प । 'वास्तविक' शब्द को पृथक् शब्द के रूप में पढ़ा जाना चाहिए न कि 'यथार्थ/युक्तियुक्त खर्चे' की व्याख्या के रूप में । अन्यथा, इसका उचित भाव नहीं निकलेगा । यह उल्लेखनीय है कि इसी पद को **संजीव कुमार जैन** (पूर्वोक्त) वाले मामले में दोहराया गया है । तथापि, न्यायालय ने स्प-ट किया कि "वास्तविक यथार्थ खर्च का ऐसे खर्च से सह-संबंध होना चाहिए जो यथार्थ और व्यावहारिक है ।" आगे यह स्प-ट किया गया : "यदि वास्तविक खर्च अधिनिर्णीत किया जाए तो यह यथार्थ होना चाहिए जिसका यह अर्थ है कि जो ऐसी प्रकृति के मामले में एक सामान्य अधिवक्ता प्रभारित करता ।" पैरा 22 का यह मत कि "खर्चे को वास्तविक और यथार्थ बनाने का उद्देश्य खर्चे के अधिनिर्णय को सरल और कारगर बनाना तथा निर्धारण की प्रक्रिया का आसान बनाना है, यह संकेत देता है कि "वास्तविक" और "यथार्थ" दोनों शब्दों को अलग-अलग पढ़ा जाना चाहिए । उदाहरणार्थ, यह इंगित किया गया है कि जहां तक अधिवक्ता फीस का संबंध है, "यथार्थ" के बजाय "वास्तविक" पर बल दिया जाना चाहिए । इस विचार को आगे पैरा22 में स्प-ट किया गया है । जहां तक न्यायालय फीस का संबंध है, जहां उपगत व्ययों (उदाहरणार्थ, साक्षियों के यात्रा व्यय, प्रमाणित प्रतियां, आदि अभिप्राप्त करने का खर्च, आदि) की बाबत वास्तविकताओं को सुनिश्चित किया जाना आवश्यक है वहां वास्तविक के बजाय यथार्थ पर बल दिया जाना चाहिए ।"

5. उच्च न्यायालय नियम, – एम विहंगम दृ-िट

(क) **सलेम एडवोकेट बार एसोसिएशन** (पूर्वोक्त) वाले मामले में खर्चे के मदों को व्यापकतः उपदर्शित करते हुए न्यायालय ने "सफल

पक्षकार द्वारा बिताए गए समय के खर्च" को खर्चे के एक मद के रूप में उल्लेख किया । संभाव्यतः इस मत से सुराग लेते हुए कलकत्ता उच्च न्यायालय ने अधिसूचना तारीख 7 दिसम्बर, 2006 द्वारा आदेश 20क के नियम 2 को संशोधित किया । नियम व्यवहार्यतः सलेम बार वाले मामले में उपवर्णित व्यापक संकेतों को दोहराता है । प्रतिस्थापित नियम के अनुसार अधिनिर्णीत खर्च "उचित अनुतो-ा पाने या उसके द्वारा बिताए गए समय के मूल्य सहित निरर्थक दावे का विरोध करने के लिए" "वास्तविक युक्तियुक्त खर्चा" होना चाहिए । यह न्यायालय फीस, अधिवक्ता फीस और ऐसे पक्षकार और उसके साक्षियों के परिवहन और रहने के लिए उपगत युक्तियुक्त व्ययों के अतिरिक्त है । प्रसंगवश, यहां यह उल्लेखनीय है कि "निरर्थक" पद का प्रयोग बहुत स्प-ट नहीं है । क्या यह केवल निरर्थक बचाव के मामलों में है कि बिताए गए समय के मूल्य की गणना की जाए, अन्यथा नहीं । अगला उपनियम (ख) वाद का निपटान करते समय न केवल सफल पक्षकार के पक्ष में बल्कि असफल पक्षकार द्वारा उपगत खर्चे की रकम नियम करने के लिए " न्यायालय को इन रकमों को नियत करने की बाध्यता डालता है । कारण यह है कि यदि अपील न्यायालय द्वारा डिक्री उलट दी जाती है और खर्चा अपीलार्थी के पक्ष में अधिनिर्णीत किया जाता है तो अपील न्यायालय के लिए खर्चे का निर्धारण करना सुविधाजनक होगा । यद्यपि दिया गया कारण नमनीय है फिर भी न्यायालय/कराधारन अधिकारी पर अपरिहार्य भार डालता है । व-र्ा 2008 में, सिक्किम उच्च न्यायालय ने कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा विरचित नए नियम 2 के सारतः समरूप नियम विरचित किया । तथापि, कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा विरचित नियम 2 के उपनियम (ख) के समरूप कोई उपबंध नहीं है ।

(ख) हम, उच्च न्यायालय के प्रस्ताव पर 29 दिसम्बर, 2006 से प्रभावी कर्नाटक राज्य द्वारा आदेश 20क में किए गए संशोधन का भी उल्लेख करते हैं । उपनियम (छ) जोड़ा गया जिसके अनुसार "उपनियम (क) से (च) के अधीन अधिनिर्णीत खर्च सुनवाई के प्रभावी दिनों के दौरान आय की हानि, प्रवहण प्रभार और निवास प्रभार, यदि कोई है, सहित सफल पक्षकार द्वारा उपगत वास्तविक या युक्तियुक्त खर्चा होगा ।"

(ग) असलियत यह है कि मुकदमे पर बिताए गए समय का खर्चा या आय की हानि धनीय निबंधनों में सुनिश्चित करना भी आसान नहीं है । ऐसे खर्चों का परिमाण निर्धारित करना जटिल होगा । संजीव कुमार जैन (पूर्वोक्त) वाले मामले के पैरा 12 में उच्चतम न्यायालय द्वारा व्यक्त मत के अनुसार, भारतीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए बिताए गए समय की मात्रा नियत करना संभव या व्यवहार्य नहीं है जो वास्तविक खर्चे के अवधारण के लिए अपेक्षित है जैसा विशे-ाज्ञ कराधान अधिकारियों द्वारा पश्चिमी देशों में किया जा रहा है । यह मत व्यक्त किया गया "यदि न्यायालयों को खर्चे के निर्धारण की स्प-ट प्रक्रिया के अपेक्षित समय को अलग करना पड़ेगा तो इससे मामलों के लंबित होने में और बाढ़ आ सकती है ।" खर्चे का निर्धारण करने की प्रक्रिया को सरल बनाने की आवश्यकता पर बल दिया गया है । वस्तुतः, यदि ऐसे खर्चे के निर्धारण के लिए उपबंध किया जाता है तो केवल कुछ मामलों में ही दावे किए जाएंगे और वह भी नकली और तैयार अनुमान पर । दावे की असलियत का अन्वे-ाण करना कठिनाइयों से भरा है और न्यायालय के समक्ष अवधारण के लिए हर हाल में मामला प्रस्तुत किया जाएगा । तथापि, ऐसे पक्षकार को जो न्यायालय के समक्ष आने में अपना समय और धन बर्बाद करता है, किसी अनुतो-ा के बिना नहीं त्याग दिया जाएगा । यदि स्थगन की मांग सारहीन और अन्यायोचित आधारों पर की जाती है तो न्यायालय को स्थगन मंजूर करते समय, अन्य बातों के साथ-साथ न्यायालय में उपस्थित होने के लिए पक्षकार द्वारा खर्च किए गए बहुमूल्य समय को हिसाब में लेते हुए पर्याप्त खर्चा मंजूर करने का विवेकाधिकार है और संभवतः कर्तव्य भी है । इसी प्रकार, यदि न्यायालय यह नि-कर्-ा निकालता है कि किसी पक्षकार ने निरर्थक या खिजाऊ मुकदमे का अवलंब लिया और मुकदमे को असम्यक् रूप से विलंबित किया तो न्यायालय को भारी खर्चा (धारा 35क के अधीन अधिकतम सीमा के अधीन रहते हुए) अधिनिर्णीत करने का विवेकाधिकार है । यह संदेहपूर्ण है कि क्या नियमों के अधीन न्यायालय में उपस्थित होने के लिए बिताए गए समय या गंवायी गई आय को युक्तियुक्त निश्चितता से परिमाण में निर्धारण किया जा सकता है । किसी भी दशा में, जैसा कि पहले कहा गया है, यह लंबी प्रक्रिया और जटिल काम है जिसे हमारे भार से बोझिल न्यायालय नहीं कर सकते । प्रयोजन बेहतर रूप से पूरा

होगा यदि स्वयं विचारण की प्रगति को दौरान, सारवान रकम के खर्चे का अधिनिर्णय किया जाए यदि पक्षकार या उसका अधिवक्ता बारंबार या कमजोर आधारों पर स्थगनों की ईप्सा करता है । ऐसा करने पर यात्रा के खर्च और दैनिक उपार्जन, यदि कोई है, की हानि को हिसाब में लिया जा सकता है ।

सामान्य लक्षण :

(घ) खर्चे के कराधारन को लागू विभिन्न नियमों और अधिवक्ता फीस नियमों के सामान्य लक्षण इस प्रकार है कि – (i) कुछ या अधिकांश नियम पुराने हो गए हैं ; (ii) वे अस्प-ट और जटिल भा-ा में लिखे गए हैं जिनमें स्प-टता की कमी है और (iii) अधिवक्ता फीस और खर्चे के अन्य तत्वों का मानदंड वर्तमान मानकों द्वारा न्यायनिर्णीत किए जाने पर काफी कम है । उच्च न्यायालयों द्वारा नियमों की गहराई से पुनरीक्षण किए जाने की भारी आवश्यकता है । हमने माननीय उच्च न्यायालयों का ध्यान आकर्नित करने के लिए व्यापक रूप से मात्र कुछ पहलुओं को उपदर्शित किया है क्योंकि पूरे देश को लागू होने के लिए एक समान नियम का सुझाव देना उचित नहीं है ।

6. अधिवक्ता फीस

6.1 खर्चे का सबसे महत्वपूर्ण घटक अधिवक्ता फीस है । इस आधार, पर मुकदमे के पक्षकार पर भारी व्यय डाला जाता है जो वह वसूल करने की स्थिति में नहीं होगा यदि अधिवक्ता/विधिक व्यवसायी फीस नियम की बाबत यथास्थिति बनी रहती है ।

6.2 वर्तमान स्थिति के अनुसार अधिवक्ता की फीस का मानदंड विशे-ाकर ऐसे मामलों की बाबत काफी कम है जिस पर मूल्यांकन लागू नहीं होता या न्यायालय फीस के प्रयोजन के लिए केवल सैद्धांतिक मूल्यांकन दर्शाया जाता है । इस प्रवर्ग में व्यादेश वाद प्रास्थिति की घो-णा, संरक्षकता मामले सहित विवाह-संबंधी विवाद और इसी प्रकार के मामले आते हैं । इन मामलों में भारी दांव लगा होता है और कार्यवाहियां काफी समय तक चलती है । फिर भी, विहित अधिवक्ता फीस

युक्तियुक्त माप-मान कसौटी को पूरा नहीं करती । इसके अतिरिक्त, जहां वाद का मूल्यांकन न्यायालय फीस (मूल्यानुसार) के प्रयोजन के लिए किया जाता है, वहां अधिवक्ता फीस पर्याप्त नहीं है और प्रतिशतता के रूप में उच्चतर पुनरीक्षण किए जाने की आवश्यकता है ।

6.3 हम "काउंसेल की फीस" "अधिवक्ता फीस" और " प्रकट परस्पर विरोध" शीर्-ा के अधीन अनुज्ञात बहुत कम रकम के कतिपय निदर्शी दृ-टांत देते हैं । प्राचीन विधि व्यवसायी अधिनियम, 1879 के अधीन विरचित दिल्ली उच्च न्यायालय नियम के अनुसार, संपत्ति, धन की वसूली संविदा या नुकसानी के भंग के वाद में संदेय फीस "यदि संपत्ति के मूल्य, ऋण या डिक्रीत नुकसानी के रकम 1 लाख रुपए है तो यह 6500/- रुपए है और फीस 14,500/- रुपए है – यदि रकम या मूल्य 5 लाख रुपए है । संदेय अधिकतम फीस 20,000/- रुपए नियत है (विधिक व्यवसायी अधिनियम के अधीन उच्च न्यायालय द्वारा बनाए गए नियमों के भाग ख के नियम 1 द्वारा) । दिल्ली उच्च न्यायालय (मूल शाखा) नियम, 1967 के भाग गठित करने वाले अध्याय 23 "खर्चे का कराधान" की अनुसूची में विनिर्दि-ट अधिवक्ता फीस "प्रतिवादी वादों" के लिए वही है । यही नियम यह विहित करता है कि अपीलों में फीस की संगणना मूल वादों के मापमान के आधे पर की जाएगी । व्यक्ति या चरित्र को क्षति के वादों में या जहां ऐसी क्षति या अधिकार के धनीय मूल्य को ठीक-ठीक परिभानित नहीं किया जा सकता जैसे संयुक्त संपत्ति का विभाजन या अन्य वाद जिनका मूल्यांकन समाधानप्रद रूप से नहीं किया जा सकता, अधिकतम संदेय फीस 5000/- और न्यूनतम फीस 500/- रुपए है (विधिक व्यवसायी अधिनियम के अधीन विरचित नियमों के भाग ख के नियम 2 द्वारा) । तथापि, नियमों[1] के अध्याय 6 के भाग (1) में जिसका भी शीर्-ाक "काउंसेल की फीस" है, विनिर्दि-ट फीस की मात्रा भिन्न है, यद्यपि वादों का विवरण सारतः वही है । प्रकीर्ण कार्यवाहियों में, विहित फीस जिला न्यायाधीश के न्यायालय में 250/- रुपए और अधीनस्थ न्यायाधीश के न्यायालय में 48/- रुपए है । विवाह संबंधी कार्यवाहियों में, संदेह अधिकतम फीस 1500/- रुपए है । साक्षियों

[1] दिल्ली उच्च न्यायालय में कार्यवाहियों से संबंधित नियम (दिल्ली उच्च न्यायालय नियम और आदेश जिल्द 5)

के व्ययों की बाबत, यह अनुबंध है कि जबतक रकम न्यायालय के माध्यम से संदत्त नहीं की जाती है उसे अधिनिर्णीत खर्चे में सम्मिलित नहीं किया जा सकता है । अपीलों में, मूल वादों को लागू फीस का आधा संदेय है । इसका यह अर्थ है कि संदेय अधिकतम फीस अपील के मूल्य को ध्यान किए बिना 10,000/- रुपए होगी । दिल्ली उच्च न्यायालय नियम में एक रुचिकर उपबंध है कि ऐसे अधिवक्ता/वकील जिसे रेलवे स्टेशन/सराय या अन्य स्थानों पर दलाल के रूप में प्रायः घूम रहे अन्य व्यक्तियों से संबंध रखने वाला जाना जाता है, की फीस के लिए ऐसे पक्षकार को कोई फीस नहीं अनुज्ञात की जाएगी जिसने ऐसे अधिवक्ता को काम पर लगाया है । यह प्रतीत होता है कि दिल्ली उच्च न्यायालय नियमों का पुनरीक्षण करने के कदम उठा रहा है ।

6.4 झारखंड उच्च न्यायालय द्वारा विरचित सिविल न्यायालय नियम का भी प्रतिनिर्देश किया जा सकता है । नियम 426(i) यह उल्लेख करता है कि अधिवक्ता की फीस न्यायालय के विवेकाधिकार पर होगी । नियत प्रतिशतता के बजाय 5000/- रुपए और 50000/- रुपए के बीच भिन्न-भिन्न स्लैब के स्थान पर अधिकतम और न्यूनतम प्रतिशतता विहित है जो कभी-कभी न्यायालय के कार्य को कठिन बनाता है ।
अनुज्ञेय अधिकतम फीस 1550/- रुपए है, यदि यथास्थिति, डिक्रीत या खारिज दावे का रकम या मूल्य 50,000/- रुपए है और यदि यह 50,000/- से अधिक होता है तो यह आधे प्रतिशत से एक प्रतिशत तक है । इसका यह अर्थ है कि यदि वाद का मूल्य 10 लाख रुपए है तो निकाली गई संदेय फीस लगभग 11,050/- रुपए होगी । किसी अधिवक्ता को अनुज्ञात किए जाने के लिए न्यूनतम फीस प्रतिवादित मामलों में 10/- रुपए और अप्रतिवादित मामलों में 5/- रुपए विनिर्दि-ट है । डिक्रियों से अपीलों में अधिकतम सुनवाई फीस 10,000/- रुपए विहित की गई है और अपील के आधारों के प्रारूपण के लिए अधिकतम फीस 500/- रुपए है । आदेशों से अपीलों और द्वितीय अपीलों में, सुनवाई फीस कम से कम 500/- रुपए है । विवाह संबंधी वाद (प्रतिवादित वाद) में सुनवाई की पहली तारीख के लिए संदेय फीस 500/- रुपए है और इसके पश्चात् यह 250/- रुपए है । प्रक्रिया फीस नकल निकलवाने का प्रभार, साक्षी भत्ता और अंगुलि छाप विशे-ज्ञ राय अभिप्राप्त फीस निचले न्यायालय में बहुत कम 3/- रुपए और 0.75 है ।

एक ऐसा नियम है जो सरकारी सेवक का वेतन 10/- रुपए प्रतिमास होने का उल्लेख करता है साक्षी के लिए भोजन भत्ता प्रतिदिन 30/- रुपए विहित है । इस सब से यह प्रकट होता है कि व-र्ा 2001 में नियम अधिसूचित करने के समय पर भी अधिवक्ता फीस सहित खर्चे को लागू करने वाले पुराने नियम प्रतिधारित किए गए है ।

6.5 व-र्ा 2010 में, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने आंध्र प्रदेश अधिवक्ता फीस नियम को संशोधित किया । उक्त नियमों को नवीनतम बनाने के गंभीर प्रयास किए गए जिससे कि विभिन्न प्रवर्ग के मामलों में अधिवक्ता फीस को यथार्थ और युक्तियुक्त बनाया जा सके, यद्यपि कुछ नियमों पर पुनःविचार करने की गुंजाइश है । नियमों की प्रति इस रिपोर्ट में संलग्न है (उपाबध-2) ।

6.6 अभागे वादकारी प्रायः अचंभित रहते है कि क्या कुछ उच्च न्यायालय नियमों में विहित फीस से, युक्तियुक्त सक्षम अधिवक्ता को लगाया जा सकता है । अधिवक्ता फीस नियम यहां-वहां कुछ संशोधनों को छोड़कर दशकों से सारतः वास्तविकता या अन्यथा पर आधारित अधिवक्ता फीस के अधिकतम मापमान से बचना चाहिए और वर्तमान प्रचलित फीस मापमान पर फिर से विचार करने की आवश्यकता है जिससे कि युक्तियुक्त और यथार्थ अधिवक्ता फीस संरचना बनाया जा सके । पणधारियों के परामर्श से अधिवक्ता फीस का पांच व-र्ा या इसी तरह में एक बार सावधिक पुनरीक्षण किए जाने की आवश्यकता है । अधिवक्ता फीस को लागू नियमों पर विचार करते समय युक्तियुक्त सक्षम और ऋजुतः अनुभवी अधिवक्ता के मापमान का पालन किया जाना चाहिए ।

6.7 कुछ राज्यों के लागू नियम विहित अधिवक्ता की फीस का एक भाग जूनियर काउंसेल की फीस के रूप में अनुज्ञात करते हैं । यह मुख्य अधिवक्ता फीस का एक-तिहाई या इसी प्रकार है । यदि कुछ नियमों में ऐसा उपबंध नहीं है तो यह आवश्यक है कि नियम विरचित करते समय उच्च न्यायालयों को इस पहलू पर ध्यान देना चाहिए ।

6.8 जहां तक सरकारी काउंसेल की फीस का संबंध है, यदि करार या नियम या नियुक्ति के निबंधनों के अधीन सरकार या स्थानीय

प्राधिकरण या पब्लिक सेक्टर उपक्रम द्वारा संदेय अधिवक्ता की फीस नियम के अधीन संदेय फीस से कम है तो अनुज्ञेय फीस उसमें विनिर्दि-ट रकम तक निर्बंधित होना चाहिए ।

6.9 प्रतिप्रे-ित मामलों और प्रतिपादित नि-पादन याचिकाओं के लिए युक्तियुक्त अधिवक्ता फीस विहित करना भी आवश्यक है क्योंकि कुछ राज्यों में ऐसा कोई नियम नहीं है । तथापि, यह ध्यान में आया है कि कुछ नियमों में (मुख्य वाद में संदेय) फीस का आधा प्रतिप्रे-ित मामलों के लिए और नि-पादन याचिकाओं के लिए एक चौथाई फीस विहित है । फिर भी यहां न्यूनतम फीस विहित करने की आवश्यकता है ।

6.10 ऐसे मामलों में जहां वाद/अपील का मूल्य केवल सैद्धांतिक है या मूल्यांकन किए जाने योग्य नहीं है (जैसे व्यादेश वाद, प्रास्थिति की घो-णा का वाद) और विवाह संबंधी कार्यवाहियों में, अधिवक्ता फीस की मात्रा जिसे इस समय काफी कम बनती है, को बढ़ाया जाना चाहिए । युक्तियुक्त न्यूनतम फीस विहित की जानी चाहिए । पेटेन्ट, ट्रेडमार्क आदि के अतिलंघन के व्यादेश वादों के लिए न्यायालय फीस बढ़ाए जाने की आवश्यकता है ; विशे-ाकर ऐसे मामलों की जटिल प्रकृति को ध्यान में रखते हुए न्यूनतम तो विनिर्दि-ट ही किया जाना चाहिए ।

6.11 जहां कहीं कतिपय प्रवर्ग की कार्यवाहियों की बाबत नियत/अधिकतम अधिवक्ता फीस विहित है, उसे उपयुक्ततः बढ़ाए जाने की आवश्यकता है । मूल्यानुसार फीस के संबंध में, विहित प्रतिशतता बढ़ाए जाने की आवश्यकता है । यदि वाद मूल्य यानी, तीन लाख रुपए बढ़ता है । अधिकतम भी बढ़ाया जाना चाहिए । इससे उच्च न्यायालय अधिक मूल्य वाले उन वाणिज्यिक और संपत्ति मुकदमे पर ध्यान देगा जिसमें भारी रकम अंतर्वलित हैं ।

6.12 माध्यस्थम मामलों, विवाह संबंधी विवादों आदि जैसे आदेशों (ए.ए.ओ., सी. एम. ए या जिस भी नाम से पुकारा जाए) के विरुद्ध अपीलों में अनुज्ञात अधिवक्ता फीस को भी उचित ढंग से बढ़ाया जाए ।

6.13 यह वांछनीय है कि अपील ज्ञापन सहित अभिवचनों के प्रारूपण

के लिए पृथक् फीस विहित/बढ़ाई जानी चाहिए ।

6.14 यह आम बात है कि प्रत्येक वादकारी अधिवक्ता के लिपिक को संदाय करता है । कभी-कभी, लिपिकीय रकम भी अधिवक्ता की फीस के साथ संगृहीत कर ली जाती है । कुछ राज्यों को छोड़कर लिपिकीय प्रभार को खर्चे के संघटक के रूप में विनिर्दि-ट नहीं किया गया है । यह ठीक और उचित है कि लिपिकीय प्रभार को खर्चे के तत्व के रूप में सम्मिलित किया जाए और उस पद के प्रति अनुज्ञेय रकम का उल्लेख नियमों या इस बाबत निर्मित मार्गदर्शक सिद्धांत में किया जाए ।

फीस प्रमाणपत्र

6.15 ऐसी दो समस्याएं है जिसे आयोग फीस प्रमाणपत्र फाइल करने के संबंध में इंगित करना चाहता है । अधिकांश नियमों में, मामले की समाप्ति के एक सप्ताह के भीतर फीस प्रमाणपत्र फाइल किया जाना अपेक्षित है क्योंकि आदेश 20 के नियम 6क के अनुसार निर्णय की तारीख से 15 दिनों के भीतर डिक्री बनाई जानी है । नियम 6 यह अधिकथित करता है कि डिक्री में वाद में उपगत खर्चे की रकम का उल्लेख होगा और किसके द्वारा या किसकी संपत्ति में से और किस अनुपात में ऐसे खर्चे संदत्त किए जाने हैं । आदेश 41 नियम 1 (मूल डिक्रियों से अपील के ब्यौरे) निर्णय की प्रति के साथ अपील के ज्ञापन की अपेक्षा करता है । पूर्व अपेक्षा यह थी कि डिक्री की प्रति अपील के ज्ञापन के साथ उपाबद्ध किया जाए । विधि आयोग ने अपनी 124वीं रिपोर्ट में यह मत व्यक्त किया कि आदेश 41, नियम 1 को संशोधित किया जाए जिससे कि डिक्री की प्रमाणित प्रति उपाबद्ध करने की अपेक्षा को समाप्त किया जा सके और अपील के ज्ञापन के साथ-साथ निर्णय के क्रियात्मक भाग को पेश कर अपील फाइल करने की अनुज्ञा दी जा सके । इस समय, ऐसी डिक्री के बिना अपील फाइल करने का कोई वर्जन नहीं है जिसमें खर्चा विनिर्दि-ट किया जाना हो । इस प्रकार, आदेश 20 के नियम 6क के अधीन 15 दिनों के समय के आदेश पर फिर से विचार करने की आवश्यकता है । तदनुसार, नियम 6क में, ‘15 दिनों’ शब्दों के स्थान पर ‘30 दिनों’ शब्द रखा जाए । कारण यह है कि यह समान्य अनुभव की बात है कि फीस प्रमाणपत्र समय से नहीं फाइल

किया जाता है या संबद्ध पक्षकार द्वारा उपगत विभिन्न व्ययों को विनिर्दि-ट करने वाले खर्चे के विल तत्परता से नहीं फाइल किए जाते हैं । प्रायः, पक्षकार का अधिवक्ता कर अधिकारी के समक्ष उपस्थित नहीं होता । फीस प्रमाणपत्र सहित सभी अपेक्षित ब्यौरे के साथ खर्चे का विल फाइल करने में विलंब एक सामान्य घटना हो गई है । प्रायः फीस प्रमाणपत्र या अन्य सबूत फाइल करने में विलंब की माफी मांगते हुए आवेदन फाइल किए जाते हैं । इस समस्या से निपटने के लिए, डिक्री के प्रारूपण के लिए (उपरोक्त वर्णनानुसार) समय बढ़ाने के अलावा यह वांछनीय है कि उच्च न्यायालय इस आशय के नियम विरचित करे कि बहस की समाप्ति के पूर्व दोनों अधिवक्ता द्वारा फीस प्रमाणपत्र फाइल किया जाए । न्यायालय को उस प्रक्रम पर फीस प्रमाणपत्र के फाइल किए जाने के संबंध में सत्यापन कराना चाहिए । तथापि, यदि नियमों का पालन करने में विद्वान् अधिवक्ता द्वारा कोई व्यावहारिक कठिनाई इंगित की जाती है तो न्यायालय निर्णय की तारीख से 15 दिनों के भीतर प्रमाणपत्र फाइल किए जाने की अनुज्ञा दे सकेगा । नियम में यह भी विहित करना आवश्यक है कि फीस प्रमाणपत्र में अन्य बातों के साथ-साथ अधिवक्ता का स्थायी खाता संख्यांक भी होना चाहिए ।

6.16 इस संदर्भ में, हम सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा118 का उल्लेख करते हैं जो यह अधिकथित करती है कि यदि उच्च न्यायालय यह आवश्यक समझता है कि मूल सिविल अधिकारिता के प्रयोग में पारित डिक्री कराधान अधिकारी द्वारा वाद में उपगत खर्चे के रकम को सुनिश्चित किए जाने के पूर्व नि-पादित की जानी चाहिए तो न्यायालय आदेश दे सकता है कि डिक्री तत्काल नि-पादित की जाए और डिक्री जहां तक खर्चे से संबंधित है, का नि-पादन यथाशीघ्र कराधान द्वारा खर्चे की रकम को सुनिश्चित किए जाने पर किया जाए ।

7. पुनरीक्षण में खर्च

अंतवर्ती आदेशों, आदि के विरुद्ध अनेक पुनरीक्षण याचिकाएं प्रायः कार्यवाहियों को विलंब करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 227 या सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के अधीन उच्च न्यायालयों में फाइल किए जा रहे हैं । सामान्यतः ऐसे मामलों में अधिनिर्णय खर्चे, यदि

कोई है, बिल्कुल नाममात्र के होते हैं । अधिकांश राज्यों के नियमों में पुनरीक्षण याचिकाओं में खर्चे के निर्धारण का उपबध नहीं है । न्यूनतम खर्चे जिसे आपवादिक परिस्थितियों में ही अधित्यजित किया जा सकता है के आदेश के साथ खर्चा (अधिवक्ता फीस सहित) नियत करने के लिए समुचित मार्गदर्शक सिद्धांत विहित करना आवश्यक है ।

8. धारा 35-क

8.1 संहिता की धारा 35-क जिसे व-र्ा 1922 में शामिल किया गया था, का शी-र्ाक 'मिथ्या या तंग करने वाले दावों या प्रतिरक्षाओं के लिए प्रतिकरात्मक खर्चे" है । यह धारा उपबंध करती है कि यदि कोई पक्षकार किसी दावे या प्रतिरक्षा पर इस आधार पर आक्षेप करता है कि यह ऐसे पक्षकार जिसके द्वारा पेश किया गया है की जानकारी में मिथ्या या तंग करने वाला है और यदि ऐसा दावा नामंजूर या परित्यक्त या प्रत्याहृत किया जाता है तो न्यायालय इसके नि-र्क-र्ा के कारण अभिलिखित करने के पश्चात् प्रतिकर के रूप में खर्चे अधिरोपित कर सकेगा । उक्त धारा का खंड(2) इस आशय की परिसीमा लगाती है कि इस प्रकार अधिरोपित प्रतिकरात्मक खर्चा 3000/- रुपए से अधिक नहीं होगा । व-र्ा 1976 में 01.02.1977 से किए गए संशोधन द्वारा 1000/- रुपए की पूर्व सीमा को बढ़ाकर 3000/- रुपए की गई थी । दूसरी परिसीमा यह लगाई गई है कि धारा के अधीन अधिनिर्णीत खर्चे की मात्रा संबद्ध न्यायालय की धनीय अधिकारिता की परिसीमा से अधिक नहीं होगी । उपधारा (2) का पहला परंतुक रकम पर आगे निर्बंधन लगाता है जो लघुवाद न्यायालय आदि के न्यायालय द्वारा प्रतिकरात्मक खर्चे के माध्यम से अधिनिर्णीत की जा सकती है । दूसरा परंतुक आगे उच्च न्यायालय को ऐसी रकम को सीमित करने की शक्ति प्रदान करता है जिसे कोई न्यायालय या न्यायालयों का वर्ग इस धारा के अधीन प्रतिकरात्मक खर्चे के रूप में अधिनिर्णीत करने के लिए सशक्त है ।

8.2 **नेशनल टेक्सटाइल निगम** बनाम **कुंज बिहारी लाल** (ए. आई. आर. 2010 दिल्ली 199) वाले मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त मत के अनुसार तंग करने वाले मुकदमे न्याय के पहिए में अड़ंगा अटकाते हैं जो असली वादकारियों को शीघ्र न्याय उपलब्ध कराने में

न्यायलयों के लिए कठिनाई पैदा करते हैं ।

8.3 धारा 35क का अवलंब किसी वाद या कार्यवाही (नि-पादन कार्यवाही सहित) में लिया जा सकता है । तथापि, अपवर्जनकारी खंड द्वारा, यह अपील या पुनरीक्षण को लागू नहीं बनाया गया है ।

8.4 विक्रय करार से संबंधित विवाद को **शिव कुमार शर्मा** बनाम **संतो-ा कुमारी**, (2007 (8) एस. सी. सी. 600) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने धारा 35-क का अवलंब लिया और खर्चे के रूप में 50,000/- रुपए का संदाय करने का निदेश दिया । न्यायालय ने यह घो-ित किया – "भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन अपनी वैवेकिक अधिकारिता का प्रयोग करते हुए और प्रतिवादी के आचरण को ध्यान में रखते हुए, हम निदेश देते हैं कि विद्वान् विचारण न्यायाधीश और उच्च न्यायालय द्वारा भी संदत्त किए जाने के लिए पहले ही निदेशित खर्चे के अलावा, संहिता की धारा 35-क के निबंधनानुसार प्रत्यर्थी के पक्ष में अपीलार्थी द्वारा खर्चा संदेय होगा । हम अपीलार्थी को खर्चे के रूप में प्रत्यर्थी को 50,000/- रुपए की रकम संदत्त करने का निदेश देते हैं ।"

8.5 धारा 35-क का प्रतिनिर्देश स्प-ट नहीं है क्योंकि धारा 35क इसकी स्प-ट भा-ाा द्वारा न्यायालय को 3000/- से अधिक अधिनिर्णीत करने की शक्ति प्रदान नहीं करती । ऐसे कुछ उदाहरण है जिसमें उच्च न्यायालय ने सिविल कार्यवाहियों में भी धारा 35-क में उपवर्णित अधिकतम सीमा से अधिक "अनुकरणीय खर्चे" के निदेश दिए थे ।

8.6 बेदखली कार्यवाहियों से संबंधित **टी. अरिवन्दनम** बनाम **टी. वी. सत्यपाल** 1977 (4) एस. सी. सी. 469 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने धारा 35-क का उल्लेख किया और इस प्रकार मत व्यक्त किया, "इस मामले में विचारण न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 35-क को याद रखेगा और निवारक कार्रवाई करेगा यदि यह समाधान हो जाता है कि मुकदमा तंग करने के हेतुक द्वारा प्रेरित था और कुलमिलकार आधारहीन था" (पैरा 6) । इस मामले में किराए की दुकान में कब्जा बनाए रखने के प्रयास में किराएदार के इशारे पर कई कार्यवाहियां चल रही थी यद्यपि उनकी बेदखली का निदेश देते हुए

न्यायालय ने पहले आदेश कर दिया था । वर्-ा 1977 में चाहे जो भी स्थिति रही हो किन्तु वर्तमान समय में, तीन हजार रुपए की इसकी अधिकतम सीमा के साथ धारा 35-क को अब तंग करने वाले मुकदमे के विरुद्ध निवारक नहीं माना जा सकता ।

8.7 माननीय उच्चतम न्यायालय **अशोक कुमार मित्तल** बनाम **राम कुमार गुप्ता** 2009 (2) एस. सी. सी. 656 वाले मामले में ऐसे मामले पर विचार करते हुए, जहां उच्च न्यायालय के इस नि-कर्-ा पर कि दोनों पक्षकार शपथ पर मिथ्या बोलने के दो-ी पाए गए थे न्यायालय ने याची पर 1 लाख रुपए और प्रत्यर्थी पर 1 लाख रुपए की अनुकरणीय खर्चा अधिरोपित किया । यह मत व्यक्त किया कि धारा 35-क के अधीन विहित सीमा पर न्यायालयों द्वारा ध्यान देना चाहिए । उक्त मामले में, उच्चतम न्यायालय ने विधिक सेवा प्राधिकरण आदि या किसी गैर-दल पूर्व संगठन को खर्चा संदत्त करने का निदेश देने की पद्धति पर भी प्रतिकूल टिप्पणी की । न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया कि प्रशासनिक विधि मामलों में खर्चा अधिग्रहण करने से संबंधित सिद्धांत और पद्धति को सिविल प्रक्रिया संहिता द्वारा शासित सिविल मुकदमों में यंत्रवत आयातित नहीं किया जा सकता है ।

8.8 उपरोक्त के बावजूद **प्रत्यक्ष कर व्यवसायी एसोसिएशन** बनाम **आर. के. जैन** 2010(8) एस. सी. सी. 281 वाले मामले में न्यायालय ने यह मत लेते हुए कि उसके समक्ष प्रस्तुत याचिका तंग करने वाली प्रकृति की थी, 2 लाख रुपए का खर्चा अधिरोपित किया और यह निदेश दिया कि इसमें से 1 लाख रुपए प्रत्यर्थी कर दिया जाएगा और 1 लाख रुपए उच्चतम न्यायालय विधिक सेवा समिति के पास जमा किया जाएगा ।

8.9 पहले ही **महेन्द्र बाबू राव महादिक और अन्य** बनाम **सुभा-ा कृ-ण कात्तिकर और अन्य** 2005 (4) एस. सी. सी. 99 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने 50,000/- रुपए का खर्चा निर्धारित करते हुए अपील खारिज कर दी थी और यह निदेश दिया कि इसे रा-ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण के पास जमा किया जाएगा । इसी प्रकार के अन्य दृ-टांत भी है ।

तथापि, उपरोक्त दो मामले रिट याचिकाओं से उद्भूत हुए थे ।

8.10 खर्चे के मामले में, सिविल वादों पर विचार करने वाले न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंधों से आबद्ध है और संहिता के उपबंधों से भिन्न खर्चा अधिनिर्णीत करने का कोई विवेकाधिकार नहीं रख सकते । क्या उच्च न्यायालय अपनी अंतनिर्हित शक्तियों का प्रयोग करते हुए सिविल वाद से उद्भूत मामलों में भी सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंधों से बाहर खर्चा अधिरोपित कर सकता है, पूर्णतः संदेह से मुक्त नहीं है । तथापि, **अशोक कुमार मित्तल** बनाम **राम कुमार गुप्ता और एक अन्य** 2009 (2) एस. सी. सी. 656 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि यद्यपि एक मत यह है कि संहिता की धारा 35 और 35-क के उपबंध समुचित मामलों मे न्यायहित में खर्चे अधिनिर्णीत करने की अपनी अंतनिर्हित अधिकारिता का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय में निहित व्यापक विवेकाधिकार को प्रभावित नहीं करेगा । तथापि, अधिक ठोस मत यह है कि खर्चे अधिनिर्णीत करने का न्यायालय का विवेकाधिकार ऐसी शर्तों और परिसीमाओं के अधीन है जो विहित किया जाए और तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के उपबंधों के अधीन है, अतः, जहां खर्चे को शासित करने वाले सिद्धांत संहिता की धारा 35 और 35क द्वारा शासित और विनियमित है, वहां संहिता के विनिर्दि-ट उपबंधों के प्रतिकूल अंतनिर्हित शक्तियों का प्रयोग करने का कोई प्रश्न नहीं है ।

8.11 **संजीव कुमार जैन** वाले मामले में भी, उच्चतम न्यायालय ने पैरा 8 में उल्लेख किया कि धारा 35 "ऐसी शर्तों और परिसीमाओं के जो विहित किया जाए के अधीन रहते हुए तत्समय प्रवृत्त विधि के उपबंधों के अनुसार" शब्दों से आरंभ होती है और तब यह तब मत व्यक्त किया : "अतः यदि संहिता या किसी नियम में कोई शर्त या परिसीमा विहित है तो सुस्प-टतः, न्यायालय खर्चे अधिनिर्णीत करने में उनकी उपेक्षा नहीं कर सकता ।"

8.12 ऐसी रकम जो धारा 35-क अधीन मकदमे के पक्षकार को अधिनिर्णीत की जा सकती है, का उस पक्षकार द्वारा उपगत वास्तविक व्ययों से कोई विशि-ट संबंध नहीं है । वस्तुतः "प्रतिकरात्मक" पद उचित

नहीं है । ये खर्चे किसी पक्षकार द्वारा उठाए गए मिथ्या और तंग करने वाले प्रकृति के अभिवाक् से संबंधित है । बहुधा, यह ऐसे पक्षकार के आचरण को दंडित करता है जिसने मिथ्या या तंग करने वाला दावा/अभिवाक् किया है और खर्चे के शीर्-र्न के अधीन अतिरिक्त रकम अधिनिर्णीत करता है । दूसरे दृ-िटकोण से विचार करने पर, इस प्रकार अधिनिर्णीत रकम और गैर-धनीय नुकसानी की प्रकृति का भाग होता है क्योंकि यह ऐसे पक्षकार जिसे अनावश्यक रूप से न्यायालय में घसीटा गया है, द्वारा गंवाए समय और उर्जा और सही गई मानसिक पीड़ा का कुछ प्रतिकर उपलब्ध कराता है । उस अर्थ में, यह कहा जा सकता है कि खर्चे प्रतिकरात्मक है । तथापि, धारा 35-क द्वारा अनुध्यात खर्चों का काफी महत्व है । इसलिए धारा 35-क के अधीन खर्चे को 'अनुकरणीय खर्चे' के रूप में वर्णित करना अधिक उचित होगा जैसा **संजीव जैन** वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा पद प्रयुक्त किया गया है । दंडात्मक खर्च एक अन्य पद है जिसका प्रयोग ऐसे संशोधन जिसका सुझाव हम दे रहे हैं, को ध्यान में रखते हुए किया जा सकता है । यह उल्लेखनीय है कि नुकसानी के संदर्भ में "दंडात्मक नुकसानी" और "अनुकरणीय नुकसानी" पदों का प्रयोग समानार्थी पद के रूप में किया गया है । दंडात्मक नुकसानी कुल मिलाकर ऐसी रकम है जो किसी व्यक्ति को उसके वास्तविक हानि की प्रतिपूर्ति करेगी । इसी सादृश्य पर दंडात्मक या अनुकरणीय खर्चे मुकदमे के पक्षकार द्वारा उपगत व्ययों में जोड़े नहीं जा सकते । वस्तुतः, खर्चे सफल पक्षकार को उसके द्वारा मुकदमे में उपगत व्ययों से क्षतिपूर्ति करने के लिए अनुज्ञात आनु-ांगिक नुकसानी की प्रकृति के माने जाने वाले खर्चे हैं । उस अर्थ में, नुकसानी के लिए प्रयुक्त विवरणात्मक शब्द को उधार लेना प्रासंगिक होगा ।

8.13 इस स्थिति में, हम **संजीव कुमार जैन** वाले मामले के पैरा15 पर उच्चतम न्यायालय के व्यक्त उचित मत को दोहराते हैं :–

> "हमे यह भी ध्यान रखना चाहिए कि "प्रतिकरात्मक खर्चे" के रूप में धारा 35क अधीन अधिनिर्णय खर्चे का विवरण यह संकेत देता है कि यह दंडात्मक के बजाय प्रतिस्थापनकारी है । मिथ्या या खिजाऊ दावे के लिए अधिनिर्णीत खर्चा दंडात्मक होना चाहिए

न कि मात्र प्रतिकरात्मक । वस्तुतः प्रतिकरात्मक खर्चा कुछ ऐसा है जो स्वयं धारा35ख और 35 में अनुध्यात है । अतः, विधानमंडल धारा 35क के अधीन "दंडात्मक खर्चे" के अधिनिर्णय पर विचार कर सकता है ।"

8.14 सफल पक्षकार को अनुकरणीय खर्चे की प्रकृति का अतिरिक्त खर्चा अधिनिर्णीत करने के अलावा, न्यायालयों को निरर्थक या खिजाऊ वाद/कार्यवाही फाइल कर या इसी प्रकृति का बचाव करके न्यायालय का समय और संसाधन न-ट करने के लिए दंडात्मक खर्चा अधिरोपित करने के लिए शक्ति प्रदान किया जाना चाहिए । इस प्रकार वसूल किए गए रकम को समुचित रूप से इस प्रयोजन के लिए सृजित "न्यायिक अवसंरचना विधि" में जमा किया जाना चाहिए । इस प्रकार, धारा 35क के अधीन अधिकतम सीमा बढ़ाते समय दो घटकों अर्थात् दंडात्मक तथ्व और विहित समग्र अधिकतम सीमा के अधीन रहते हुए खर्चा अधिनिर्णय करने में प्रतिकरात्मक तत्व का संयोजन होना चाहिए । तदुनसार, आयोग द्वारा 35क को नया रूप देने का सुझाव देता है ।

8.15 **विनोद सेठ** बनाम **देविन्दर बजाज**, 2010 (8) एस. सी.सी. 1 वाले मामले के पैरा 52 में उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि 3000/- रुपए की अधिकतम सीमा का यथार्थ पुनरीक्षण किए जाने की आवश्यकता है । प्रकटतः कारण यह है कि उक्त रकम मुश्किल से मिथ्या और खिजाऊ वादों और प्रतिरक्षाओं के विरुद्ध निवारक के रूप में कार्य करेगा । तीन दशक से अधिक पहले से विहित अधिकतम रकम ने अपनी सुसंगति और प्रयोजन खो दी है । **संजीव कुमार जैन** वाले मामले में, उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि एक लाख रुपए की अधिकतम सीमा युक्तियुक्त प्रतीत होती है । उस मामले में न्यायालय के समक्ष फाइल किए गए मत भारत के विधि आयोग के लिखित कथन में, यही सुझाव दिया गया था और माननीय न्यायालय ने प्रकटतः इसकी पुन्टि की है । अतः, यह सुझाव लागू किए जाने योग्य है धारा 35-क का उपयुक्त संशोधन किया जाना चाहिए । भारी खर्चे के अधिरोपण द्वारा खिजाऊ मुकदमे को रोकना एक सुमान्यताप्राप्त प्रतिमान है और इसके लिए पर्याप्त विधायी समर्थन होना चाहिए ।

8.16 यह उल्लेखनीय है कि विभिन्न स्थानों पर हुए न्यायिक अधिकारियों और अधिवक्ताओं के सम्मेलन में खर्चे के वि-ाय पर भी विचार-विमर्श किया गया । इस बात पर एक राय थी कि धारा 35-क द्वारा विहित अधिकतम सीमा को सारतः बढ़ाया जाए और खर्चे की मात्रा को यथार्थतः बढ़ाया जाना होना चाहिए ।

8.17 इस समय लागू धारा के अनुसार धारा 35-क के अधीन प्रतिकरात्मक खर्चा तभी अधिनिर्णेय है यदि कोई पक्षकार यह आक्षेप करता है कि दावा या प्रतिरक्षा या इसका कोई भाग इसके कारणों को अभिलिखित करने के पश्चात् पक्षकार के ज्ञान में मिथ्या और खिजाऊ है । न्यायालय को स्वप्रेरणा से अनुकरणीय खर्चे अधिनिर्णीत करने की अतिरिक्त शक्ति प्रदान करते हुए उपयुक्ततः उपबंध को संशोधित किए जाने की आवश्यकता है यदि न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि इस बाबत विनिर्दि-ट दावा करने वाले अन्य पक्षकार को परवाह किए बिना दावा या प्रतिरक्षा पक्षकार की जानकारी में मिथ्या या तंग करने वाला है ।

8.18 पूर्वगामी चर्चा के आलोक में, आयोग का यह मत है कि धारा 35-क को निम्नलिखित उपबंध करते हुए संशोधित किया जाए :

(1) व-ार्ा 1976 में विहित 3000/- रुपए की अधिकतम सीमा को बढ़ाकर 1,00,000/- रुपए किए जाने की आवश्यकता है ;

(2) धारा 35-क के अधीन अधिनिर्णीत खर्चे (अधिकतम 10000/- रुपए) में से, खर्चे का एक भाग ऐसे पक्षकार के पक्ष में अनुज्ञात किया जाए जिसे निरर्थक या खिजाऊ मुकदमे में घसीटा गया है और खर्चे की रकम का एक भाग प्रत्येक उच्च न्यायालय में सृजित किए जाने वाले न्यायिक अवसरंचना निधि में जमा किए जाने का निदेश दिया जाए ।

(3) 'प्रतिकरात्मक' शब्द जहां कहीं यह धारा 35-क में आता है, के स्थान पर 'अनुकरणीय' पद रखा जाए ।

(4) प्रत्येक न्यायालय स्वप्रेरणा से किसी पक्षकार के आवेदन के बिना

भी, धारा 35-क के अधीन अनुकरणीय खर्चा अधिनिर्णीत करने के लिए सशक्त होगा यदि न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि दावा या प्रतिरक्षा पक्षकार की जानकारी में मिथ्या या खिजाऊ है । तथापि, ऐसा आदेश पारित करने के पूर्व निर्णय की उद्घो-ाणा की तारीख पर सुनवाई का अवसर प्रदान किया जाएगा जिसके विरुद्ध ऐसा आदेश पारित किया जाना प्रस्तावित है ।

8.19 तदनुसार, धारा 35-क को इस प्रकार पुननिर्मित किया जाए :

(i) शी-र्क भाग में, 'प्रतिकरात्मक' शब्द के स्थान "अतिरिक्त और अनुकरणीय" शब्द रखा जाए । उपधारा (1) के अंतिम शब्द अर्थात् "प्रतिकर के माध्यम से" हटाया जाए और इसके बजाय "उपखंड (2) में विनिर्दि-ट सीमा के अधीन रहते हुए अतिरिक्त और अनुकरणीय खर्चे" शब्द रखे जाएं ;

(ii) उपधारा (1) के बाद निम्नलिखित उपधारा जोड़ी जाए

1.क : न्यायालय, पक्षकार द्वारा किए गए किसी आक्षेप या किए गए किसी आवेदन की परवाह किए बिना उपधारा (1) में अधिकथित उसी शर्तों के अधीन और प्रभावित पक्षकार को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात् उपधारा (2) में विनिर्दि-ट अधिकतम सीमा के अधीन रहते हुए अतिरिक्त और अनुकरणीय खर्चे अधिनिर्णीत करते हुए आदेश पारित कर सकेगा ।

परन्तु न्यायालय द्वारा पक्षकार की प्रतिकूल सामाजिक-आर्थिक स्थिति और ऐसी विपन्नता जो इस उपधारा के अधीन खर्चे अधिरोपित करने पर कारित हो सकती है, खर्चे की मात्रा अवधारित करते समय विचार में लिया जाना चाहिए ।

1-ख इस प्रकार अधिनिर्णीत खर्चे में से, खर्चे का भाग ऐसे

पक्षकार को संदत्त करने का आदेश दिया जाएगा जिसके विरुद्ध मिथ्या या खिजाऊ प्रकृति का दावा या प्रतिरक्षा गठित किया गया है और इसका एक भाग उच्च न्यायालय के आदेशों के अधीन सृजित न्यायिक अवसरंचना निधि में जमा किए जाने का आदेश दिया जाएगा ;

1-ग उच्च न्यायालय न्यायिक अवसरंचना निधि के सृजन और प्रशासन के लिए नियम विरचित कर सकेंगे और इसके होते हुए भी कि ऐसी निधि सृजित नहीं की गई है, न्यायालय निरर्थक या खिजाऊ दावे या प्रतिरक्षा के अधीन रहते हुए पक्षकार को उपधारा (1) के अधीन खर्चे अधिनिर्णीत कर सकेगी ।

(iii) उपधारा (2) में "तीन हजार रुपए" के बजाय "एक लाख रुपए" रखा जाए ।

(iv) उपधारा के प्रथम परंतुक का लोप किया जाए क्योंकि अब यह आवश्यक नहीं है ।

(v) उपधारा (4) में, 'प्रतिकर' पद के स्थान पर 'खर्चे' शब्द रखा जाए ।

9. धारा 95

9.1 संहिता की धारा 95 यह उपबंध करती है कि जहां किसी वाद में गिरफ्तारी या कुर्की की गई है या धारा 94(ग) के अधीन अस्थायी व्यादेश मंजूर किया गया है, वहां यदि न्यायालय का समाधान हो जाता है कि गिरफ्तारी, कुर्की या व्यादेश अपर्याप्त आधारों पर की गई है या प्रतिवादी द्वारा किए गए आवेदन पर वाद संस्थित करने के कोई युक्तियुक्त या संभाव्य आधार नहीं थे, तो न्यायालय प्रतिवादी को युक्तियुक्ति प्रतिकर किन्तु 50,000/- रुपए से अनधिक या अपनी धनीय अधिकारिता की सीमाओं से अधिक अधिनिर्णीत कर सकता है । 1.7.2009 से प्रभावी 1999 के अधिनियम 46 द्वारा संशोधन के पूर्व ऐसी

रकम जो इस उपबंध के अधीन अधिनिर्णीत की जा सकती थी, "1000/- रुपए के अनधिक" थी । धारा 95 की उपधारा (2) ऐसी गिरफ्तारी, कुर्की या व्यादेश की बाबत प्रतिकर के किसी वाद पर वर्जन अधिथोपित करती है यदि प्रतिवादी द्वारा धारा 95 के उपबंधों का अवलंब लिया जाता है और न्यायालय द्वारा आदेश पारित किया जाता है । **बैंक ऑफ इंडिया** बनाम **लेखीमोनी दास**, 2000(3) एस. सी. सी. 64 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय को धारा 95 की व्याप्ति पर विचार करने का अवसर मिला और न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि उक्त उपबंध की व्याप्ति बहुत सीमित है और संक्षिप्त कार्यवाही की प्रकृति की है और यह कि यह वाद की आनुकल्पिक है ; यह कि वाद में जो सिद्ध किए जाने की अपेक्षा होगी वह धारा 95 के अधीन आवेदन के न्यायनिर्णयन से बिल्कुल भिन्न होगी ; यह कि यदि कोई पक्षकार धारा 95 के अधीन उपचारों का फायदा उठाता है तो अधिनिर्णीत की जा सकने वाली रकम धारा में विनिर्दि-ट रकम तक सीमित होगी ।

9.2 इस उपबंध के प्रयोजन को पूरा करने के लिए 50,000/- रुपए के स्थान पर 1,00,000/- रुपए का अंक रखकर सीमा को आगे बढ़ाना आवश्यक है । इस संबंध में, यह स्मरण किया जा सकता है कि आयोग ने ऊपर यह सिफारिश की है कि धारा 35-क (निरर्थक या खिजाऊ मुकदमे के खर्चे) के अधीन अधिकतम सीमा को 1,00,000/- रुपए तक बढ़ाया जाए । तर्क की समानाता द्वारा दशकों पहले विहित धारा 95 के अधीन अधिकतम सीमा को 1,00,000/- रुपए तक बढ़ाना ठीक और उचित है ।

10 धारा 35-ख : ("विलंब कारित करने के लिए खर्चा")

10.1 अपनी 54 रिपोर्ट (1973) में, विधि आयोग ने निम्न प्रकार से धारा 35-ख के अंतःस्थापन की सिफारिश की थी :

> "35-ख न्यायालय खर्चे का आदेश पारित करते समय मुकदमे के किसी प्रक्रम के विलंब के लिए उत्तरदायी पक्षकार से उस विलंब के अनुपात में खर्चे दिलवा सकेगा, चाहे वाद की अंतिम परिणति जो भी हो ।"

10.2 सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा धारा 35-ख सम्मिलित की गई जो सारतः विधि आयोग द्वारा दिए गए सुझाव के अनुरूप है । तथापि, किसी कारण से स्थगन अभिप्राप्त करने के खर्चे को शामिल करने के लिए धारा 35 की परिधि को बढ़ा दिया गया है ।

10.3 सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 35-ख न्यायालय को ऐसे पक्षकार से अन्य पक्षकार को खर्चा अदा करने की अपेक्षा करते हुए आदेश करने की शक्ति प्रदान करती है जो कार्यवाहियों में विलंब कारित कर रहा है जो "न्यायालय की राय में उस नियत तारीख को न्यायालय में हाजिर होने में उपगत व्ययों की बाबत दूसरे पक्षकार को प्रतिपूर्ति करने के लिए युक्तियुक्त रूप से पर्याप्त हो।" धारा 35-ख जो संकीर्ण है कि धारा 35-क दो स्थितियों को समाहित करती है : एक जहां वाद का पक्षकार ऐसे कदम उठाने में असफल रहता है जो नियत तारीख को संहिता के अधीन लिया जाना अपेक्षित था अर्थात् अभिलेख पर विधिक प्रतिनिधियों को लाने के लिए आवेदन का फाइल न किया जाना, लिखित कथन फाइल न करना, समन या नोटिस आदि तामील करवाने के लिए आवश्यक कार्रवाई न करना, फाइल करने के लिए आदेशित दस्तावेज फाइल न करना, प्रश्नमाला का उत्तर न देना, आदि, आदि । दूसरा, साक्ष्य पेश करने के लिए या "किसी अन्य आधार पर" स्थगन अभिप्राप्त करना है । किसी भी दशा में, न्यायालय द्वारा खर्चा अधिनिर्णीत किया जा सकता है । धारा 35-ख ऐसा आदेश करने के लिए कारण अभिलिखित किए जाने की अपेक्षा करती है और आगे खर्चा इस प्रकार होना चाहिए जो न्यायालय में हाजिर होने के लिए उपगत व्यय को शामिल करता हो । धारा 35-ख की उपधारा (1) में एक ऐसा महत्वपूर्ण उपबंध है जो यह कहता है कि ऐसे आदेश की अगली तारीख पर ऐसे खर्चे का संदाय यथास्थिति वाद या प्रतिरक्षा को आगे चलाए जाने की 'पूर्ववर्ती शर्त' होनी चाहिए । **मनोहर सिंह** बनाम **वी. एस. शर्मा,** 2010 (1) एस. सी. सी. 53, वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह अर्थान्वयन किया गया है कि यह उपबंध वाद, आदि के आगे चलाए जाने पर अवरोध लगाता है । उस मामले में, उच्चतम न्यायालय को संहिता की धारा 35-ख का अवलंब लेकर 5000/- के खर्चे के संदाय की असफलता के वाद को खारिज करते हुए पारित आदेश पर विचार करना था । उच्च

न्ययालय ने यह मत व्यक्त किया था कि धारा 35-ख के उपबंध आज्ञापक थे और यदि उद्ग्रहण योग्य खर्चे संदत्त नहीं किए गए तो "न्यायालय के पास वाद को न चलाए जाने की अनुज्ञा देने का ही एकमात्र अनुक्रम रह जाता है ।" तथापि, उच्चतम न्यायालय ने "वाद को आगे चलाए जाने" शब्द और "प्रतिरक्षा को आगे चलाए जाने" शब्दों का निर्वचन केवल इसी अर्थ में किया कि यदि उद्गृहीत खर्चा संदत्त नहीं किया गया तो ऐसा व्यतिक्रमी पक्षकार वाद में कोई गति लाने से प्रतिनिद्ध है और वादी द्वारा खर्चे के गैर-संदाय के स्वतः परिणाम के रूप में वाद की खारिजी की एक अपेक्षा के रूप में इसका अर्थ नहीं लगाया जा सकता । उक्त मत व्यक्त करते हुए, न्यायालय ने वाद को प्रत्यास्थापित किया और तथापि यह निदेश दिया कि संबद्ध प्रतिरक्षा साक्षी की प्रति-परीक्षा करने का वादी का अधिकार समपहृत हो जाएगा । न्यायालय ने उसी समय यह भी शर्त लगाई कि "यदि अपीलार्थी-वादी सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 148 के अधीन समुचित आवेदन के साथ खर्चा देता है तो विचारण न्यायालय उसके अनुरोध पर विधि के अनुसार विचार कर सकेगा । यदि न्यायालय जमा करने का समय बढ़ाता है और वादी को खर्चा देने और वाद को आगे चलाए जाने की अनुज्ञा देता है तो वह वादी को प्रति. सा. 2 की प्रति-परीक्षा करने के लिए वादी को हकदार नहीं बनाएगा" [पैरा 13(iii) द्वारा] । यह निर्णय स्प-ट करता है कि धारा 35-ख में अधिकथित अवरोध आत्यंतिक नहीं है और यह धारा 148 के अधीन है जो कुल 30 दिनों तक समय के बढ़ाए जाने का उपबंध करती है । इस प्रकार, धारा 35-ख में अधिकथित अवरोध की कठोरता को हल्का कर दिया गया है । हम यहां इस वृहत् प्रश्न पर विचार नहीं कर रहे हैं कि क्या वाद के शीघ्र निपटान के हित में धारा 148 का अवलंब जिए जाने की अनुज्ञा दी जानी चाहिए । इस समय यह कहना पर्याप्त है कि न्यायालय धारा 148 के अधीन अपनी वैवेकिक शक्ति का प्रयोग करते हुए खर्चा या ऐसी अन्य शर्तें अधिरोपित करने के लिए शक्तिहीन नहीं है जो आगे व्यतिक्रमों को रोकने के रूप में कार्य करेगा । तार्किकतः, धारा 148 के अधीन आदेश पारित करते समय अधिरोपित किया जाने वाला खर्चा भारी होना चाहिए ।

11. **आदेश 17 (स्थगन)**

11.1 धारा 35-ख से निकट सहबद्ध सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 17, नियम 2 है जिसका शीर्-ाक "स्थगन के खर्चे" हैं । हम उपनियम (1) और (2) को उद्धृत करते हैं ।

1. **न्यायालय समय मंजूर कर सकेगा और सुनवाई स्थगित कर सकेगा** – (1) न्यायालय वाद के किसी प्रक्रम पर यदि पर्याप्त हेतुक दर्शाया गया हो तो पक्षकारों या उनमें से किसी को समय मंजूर कर सकेगा और समय-समय पर लेखबद्ध रूप में कारण अभिलिखित करते हुए वाद की सुनवाई स्थगित कर सकेगा :

   परंतु ऐसा कोई स्थगन वाद की सुनवाई के दौरान किसी पक्षकार को तीन बार से अधिक मंजूर नहीं किया जाएगा ।

(2) **स्थगन का खर्चा** – ऐसे सभी मामले में न्यायालय वाद की अगली सुनवाई के लिए दिन नियत करेगा और स्थगन द्वारा उद्भूत खर्चे के बारे में ऐसे आदेश कर सकेगा या ऐसे अधिक खर्चे का आदेश कर सकेगा जो न्यायालय ठीक समझे ।

11.2 यह स्थगनों को शासित करने वाला सामान्य उपबंध है और यह धारा 35-ख का संपूरक है । इस उपबंध के अधीन अनुध्यात खर्चे को न्यायालय में हाजिर होने के लिए पक्षकार द्वारा उपगत व्ययों तक आवश्यक रूप से सीमित किए जाने की आवश्यकता नहीं है । "ऐसे अधिक खर्चे जो न्यायालय ठीक समझे" पद महत्वपूर्ण है । आदेश 17, नियम 2 के अधीन खर्चे की मात्रा इस प्रकार नियत किया जा सकता है जिससे कि युक्तियुक्त सीमा तक अधिवक्ता की फीस को सम्मिलित किया जा सके । यदि कोई पक्षकार बार-बार स्थगनों की मांग कर रहा है तो स्वाभाविकतः पक्षकार के समग्र आचरण, अंतवर्लित वस्तु और इसी प्रकार जैसे विभिन्न सुसंगत कारकों के आधार पर भारी खर्चे अधिनिर्णीत किए जा सकते हैं ।

11.3 यह सामान्य बात है कि वस्तुतः विभिन्न सम्मेलनों से प्राप्त जानकारी के द्वारा आयोग के संज्ञान में यह आया कि अनावश्यक स्थगन चाहने वाले पक्षकार के विरुद्ध न्यायालयों द्वारा अधिनिर्णीत खर्चे की मात्रा कुल मिलकार बहुत थोड़ी होती है । यह दो सौ रुपए या देश के कुछ भागों में इससे भी कम हो सकता है ।

11.4 ऐसा अल्प खर्चा अधिनिर्णीत करके, स्थगनों को हतोत्साहित करने का वांछित उद्देश्य निरर्थक हो जाता है । यह वांछनीय है कि उच्च न्यायालयों को स्थगनों के लिए न्यूनतम या अल्प खर्चा अधिनिर्णीत करने की पद्धति को रोकने और ऐसे व्यय की प्रतिपूर्ति जो अन्य पक्षकार द्वारा उपगत की गई हो और समुचित मामलों में, अधिवक्ता की फीस के प्राक्कलित रकम को सम्मिलित किया जा सकता है, के लिए पर्याप्त युक्तियुक्त खर्चा अधिनिर्णीत करने के लिए न्यायिक अधिकारियों को निदेशात्मक परिपत्र जारी करना चाहिए । जिला न्यायाधीशों को, यदि आवश्यक हो बार के सदस्यों से परामर्श करने के पश्चात् इस बाबत कतिपय मार्गदर्शक सिद्धांत विकसित करने का अनुदेश दिया जाएगा । विकल्पतः, उच्च न्यायालय नियम विरचित/पुनरीक्षण करते समय स्थगन चाहने वाले पक्षकारों द्वारा संदेय न्यूनतम रकम विनिर्दि-ट कर सकेंगे । यदि स्थगन के अनुरोध को दोहराया जाता है तो खर्चा न्यूनतम से अधिक होना चाहिए । यदि दोनों पक्षकार स्थगन चाहते हैं जो युक्तियुक्त तत्परता और सावधानी का प्रयोग कर दूर किया जा सकता है, तो खर्चा न्यायिक अवसंरचना निधि या जिला/तालुक/मंडल/विधिक सहायता केन्द्रों में जमा किए जाने का निदेश दिया जाना चाहिए ।

11.5 आगे, यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि स्थगन चाहने वाले पक्षकार द्वारा खर्चा वस्तुतः संदत्त किया जाए । संदाय की प्राप्ति को प्रमाणित करने वाला साक्ष्य न्यायालय में फाइल किया जाए या खर्चा स्वयं न्यायालय हाल में अन्य पक्षकार को (यदि उपस्थित है) संदत्त किया जाए । खर्चा को न्यायालय में जमा किए जाने की संभाव्यता पर भी विचार किया जाए । उच्च न्यायालय द्वारा नियम विरचित कर या समरूप पद्धति विकसित कर प्ररूपिकताएं विहित की जा सकती हैं । आयोग इस कारण इस पहलू का उल्लेख कर रहा है कि न्यायिक अधिकारियों और बार के सदस्यों से भी यह जानकारी प्राप्त हुई है कि खर्चे के संदाय की

रिपोर्टिंग उपहास बन गया है और प्रायः न्यायालय को अभ्यावेदन दिया जाता है कि अधिनिर्णीत खर्चा प्राप्त हो गया है यद्यपि वास्तविकतः प्राप्त नहीं होता है ।

12 आदेश 25 (खर्चे के लिए प्रतिभूति)

12.1 उपनियम (1) और (2) के सुसंगत भाग को यहां उद्धृत किया जा रहा है :

1. **वादी से खर्चों के लिए प्रतिभूति कब अपेक्षित की जा सकती है** –

(1) वाद के किसी प्रक्रम में न्यायालय या तो स्वयं अपनी प्रेरणा से या किसी प्रतिवादी के आवेदन पर ऐसे कारणों से जो लेखबद्ध किए जा सकेंगे, यह आदेश वादी को दे सकेगा कि वह किसी भी प्रतिवादी द्वारा उपगत और संभवतः उपगत किए जाने वाले सभी खर्चों के संदाय के लिए प्रतिभूति न्यायालय द्वारा निश्चित समय के भीतर दे :

परंतु ऐसा आदेश उन सभी मामलों में किया जाएगा जिनमें न्यायालय को यह प्रतीत होता हो कि एकमात्र वादी या (जहां एक से अधिक वादी हों वहां) सभी वादी भारत के बाहर निवास करते हों और ऐसे वादी के पास या ऐसे वादियों में से किसी के पास भी भारत के भीतर वादान्तर्गत संपत्ति से भिन्न कोई भी पर्याप्त स्थावर संपत्ति नहीं है ।

(2) ....

12.2 प्रतिभूति प्रस्तुत करने की असफलता के प्रभाव को नियम 2 में अधिकथित किया गया है : उपबंध की व्याप्ति और परिधि को पुराने नियम के स्थान पर नया नियम 1 प्रतिस्थापित कर वर्-1 1956 में व्यापक बनाया गया है । वर्तमान नियम का परंतुक पूर्ववर्ती नियम था । कुछ राज्यों ने ऐसे मामलों को अंतर्वि-ट करने के लिए इस उपबंध को संशोधित किया है जिसमें वादी को वाद के गैर-पक्षकार द्वारा वित्तपो-ित

किया जाता है । यह स्प–ट नहीं है कि क्यों केवल वादी को खर्चे की प्रतिभूति देने की अपेक्षा होती है । प्रतिवादी के अपवर्जन के पीछे तर्क प्रमाण्य नहीं है । संभवतः यह तत्समय विद्यमान स्थिति पर आधारित था । इस स्थान पर वादी और प्रतिवादी के बीच विभेद अतार्किक है । मुकदमे के वर्तमान पैटर्न को ध्यान में रखते हुए ऐसा कोई कारण नहीं है कि क्यों वादी या प्रतिवादी में से एक से खर्चे की प्रतिभूति प्रस्तुत करने की अपेक्षा क्यों नहीं की जानी चाहिए यदि ऐसी प्रतिभूति की अपेक्षा करने की परिस्थितियां विद्यमान है । अतः, प्रतिवादी को उस आदेश 25 की परिधि के भीतर सम्मिलित करने के लिए आदेश 25 का उपयुक्त संशोधन वांछनीय है । इसी प्रकार इसमें प्रतिवादी को शामिल करने के लिए परंतुक का उपयुक्त संशोधन किया जाना चाहिए ।

12.3 प्रतिभूति प्रस्तुत करने से संबंधित सहबद्ध नियम आदेश 16, नियम 10 है ।

13 सिफारिशों का संक्षिप्तांश

(1) सिविल वाद/कार्यवाहियों के खर्चा ऐसे होने चाहिए जिससे कि मिथ्या और तंग करने वाले मुकदमों को रोका जा सके और तुच्छ आधारों या दूरस्थ प्रयोजन के लिए स्थगनों को हतोत्साहित किया जा सके । इसके अतिरिक्त, सफल पक्षकार को अधिनिर्णीत किए जाने वाले खर्चे यथार्थ और युक्तियुक्त होने चाहिए और इस आशय के लिए उच्च न्यायालय द्वारा प्रचलित नियमों पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए ।

(2) इस सिद्धांत कि खर्चे घटनाओं के अनुसार होना चाहिए और जिसे सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 35 में कानूनी मान्यता प्राप्त है, को बहुत गंभीरता से न्यायालयों द्वारा प्रभावी बनाया जाना चाहिए और विपथन बिरले ही होना चाहिए । **संजीव कुमार जैन** [2011 जेटी (12) 435] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के हाल ही के विनिश्चय ने इस पहलू पर बल दिया है ।

तथापि, खर्चे का अधिनिर्णय ऐसे पक्षकारों को असम्यक कठिनाई में डालने वाला नहीं होना चाहिए जो अपनी सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों के कारण भुगतान करने की क्षमता नहीं रखते ।

(3) (क) खर्चे विशे-ाकर अधिवक्ता की फीस के संबंध में उच्च न्यायालयों द्वारा विरचित नियमों का समग्रता से पुनरीक्षण किया जाना चाहिए जिससे कि यथार्थ और पर्याप्त खर्चे के सिद्धांत के अनुरूप बनाया जा सके । [ऐसे पहलू जिन पर उच्च न्यायालयों की समिति को इस बाबत नियमों का पुनरीक्षण करते समय अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए, विभिन्न स्थानों, विशे-ाकर पैरा 4.2, 4.3, 5 और 6 पर विमिर्शित है]

(ख) नियम नवीनतम होने चाहिए और भा-ाा सरल बनाई जाए जिससे स्प-टता आ सके । अनावश्यक और पुराने नियमों को समाप्त कर दिया जाना चाहिए । खर्चे के विधेयक के प्ररूप को पुनरीक्षित किए जाने की आवश्यकता है । फीस प्रमाणपत्र फाइल करने की प्रक्रिया में भी परिवर्तन करने की आवश्यकता है ।

(4) स्थगन खर्चा पर्याप्त अधिक होना चाहिए और इसे सुनिश्चित करने के लिए उच्च न्यायालय पद्धति निदेश या परिपत्रों के द्वारा मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित कर सकेंगे । स्थगनों के लिए खर्चे मंजूर करने में विचारण न्यायाधीशों की ओर से समरूप दृ-िटकोण विकसित किया जाना चाहिए ।

(5) सिविल प्रक्रिया संहिता में निम्नलिखित विधायी संशोधन सुझाए जाते हैं :

(i) मिथ्या और खिजाऊ, मुकदमे के विरुद्ध बेहतर नियंत्रण रखने के लिए पैरा 8.19 के उपवर्जन के अनुसार धारा 35-क (मिथ्या या तंग करने वाले दावे/प्रतिरक्षा के लिए खर्चे) को पुनर्निर्मित किया जाना चाहिए । प्रस्तावित संशोधन द्वारा

अधिकतम सीमा तीन हजार रुपए से बढ़ाकर एक लाख रुपए किए जाने और न्यायिक अवसंरचना निधि जिनमें खर्चे के एक भाग को जमा करने का आदेश दिया जाएगा, के सृजन करने पर बल दिया गया है ।

(ii) पैरा 9.2 द्वारा अधिकतम सीमा पचास हजार रुपए से एक लाख रुपए बढ़ाने के लिए धारा 95 (अपर्याप्त आधारों पर गिरफ्तारी, कुर्की आदि अभिप्राप्त करने के लिए प्रतिकर) का संशोधन ;

(iii) सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 25 (खर्चे के लिए प्रतिभूति) का संशोधन किया जाए जिससे कि प्रतिवादी को इसकी परिधि के भीतर सम्मिलित किया जा सके ;

(iv) खर्चे की आसान वसूली सुकर बनाने के लिए, आदेश 61 को संशोधित किया जाए जिससे कि विशे-ा कारणों से आधे खर्चे की सीमा के संदाय से मुक्त अपील न्यायालय में निहित विवेकाधिकार के अधीन रहते हुए अपील के ग्रहण किए जाने के पूर्व खर्चे के संदाय का सबूत फाइल करना बाध्यकर बनाया जा सके ।

(v) आदेश 20, नियम 6क (डिक्री की तैयारी) में, 15 दिन "शब्दों के स्थान "30 दिन" शब्द रखा जाए जिससे कि पक्षकारों को खर्चे के सभी ग्राह्य मदों का दावा करने के लिए पर्याप्त समय दिया जा सके और खर्चा कराधान अधिकारी अधिक समाधानप्रद रूप से खर्चा सुनिश्चित करने के लिए समर्थ होगा ।

ह0/-
(न्यायमूर्ति पी. वी. रेड्डी)
अध्यक्ष

ह0/-
[न्यायमूर्ति शिव कुमार शर्मा]

ह0/-
[अमरजीत सिंह]

सदस्य	सदस्य

उपाबंध –I

सिविल मुकदमे के खर्चे – उच्चतम न्यायालय के कुछ निदर्शी मामले

यद्यपि सिविल प्रक्रिया संहिता खर्चे का अधिनिर्णीत किया जाना नियम के रूप में अनुध्यात करती है और यदि खर्चे अधिनिर्णीत नहीं किए जाते हैं तो कारण अभिलिखित किए जाने चाहिए फिर भी उच्चतम न्यायालय के निर्णयों से कोई संगत सिद्धांत नहीं निकाला जा सकता कि कब किसी पक्षकार को खर्चे से वंचित किया जा सकता है । ऐसा मामलों में भी जहां न्यायालय ने महसूस किया कि अनुकरणीय खर्चो की आवश्यकता है, खर्चों की परिगणना तदर्थ प्रतीत होती है और कोई मार्गदर्शन प्रस्तुत नहीं करता । ऐसी स्थितियां है जहां न्यायालय ने महसूस किया कि वस्तुतः वाद के पक्षकारों के आचरण से अनुकरणीय खर्चों का अधिनिर्णीत किया जाना अपेक्षित है किन्तु कोई अनुकरणीय खर्चा अधिरोपित नहीं किया, यहां तक कि अनुज्ञेय सामान्य खर्चा भी अधिनिर्णीत नहीं किया गया ।

उदाहरणार्थ, **अमरेन्द्र कोमलम** बनाम **उ-ना सिन्हा और एक अन्य** (2005) 11 एस. सी. सी. 251 वाला मामला देखिए, "पूर्वगामी कारणों से, अपील सफल रहती है । यद्यपि यह अनुकरणीय खर्चा अधिनिर्णीत करने के लिए उत्कृ-टतः एक उचित मामला है, हम ऐसा करने से विरत रहते हैं । कोई खर्चा अधिरोपित नहीं किया जाता ।"

"इसी प्रकार, **गायत्री डे** बनाम **मौसमी सहकारी हाउसिंग सोसाइटी लि0 और अन्य** (2004) 5 एस. सी. सी. 90 वाले मामले में, यद्यपि न्यायालय का यह मत था कि यह अनुकरणीय खर्चा अधिनिर्णीत करने का उचित मामला था किन्तु उसमें ऐसा खर्चा भी अनुज्ञात नहीं किया जो सामान्यतः याची पाने का हकदार होता और इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :– अपील मंजूर की जाती है, यद्यपि यह मामला अनुकरणीय खर्चा अधिनिर्णीत करने का एक उत्कृ-ट उचित मामला है किन्तु हम उदारवादी दृ-टिकोण अपनाते हुए कोई खर्चा अधिरोपित नहीं करते ।"

पुनः **सुमेर** बनाम **उ. प्र. राज्य** (2005) 7 एस. सी. सी. 220 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया : "साधारणतः इस प्रवृत्ति की रोगहर याचिका याचिकाकर्ता पर अनुकरणीय खर्चा अधिरोपित कर खारिज किए जाने योग्य है, किन्तु इस मामले में, हम यह विचार करते हुए खर्चा अधिरोपित करने से विरत रहते हैं कि याचिका एक दांडिक अपील से उद्भूत हुई ।"

दत्ताराज नाथूजी थावेर बनाम **महारा-ट्र राज्य और अन्य** (2005) 1 एस. सी. सी. 590 वाले मामले में, यद्यपि न्यायालय ने महसूस किया कि अनुकरणीय खर्चा अधिरोपित किया जाए किन्तु संयोगवश जहां तक उच्चतम न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों का संबंध है, इस प्रकार मत व्यक्त करते हुए कोई खर्चा अधिरोपित करने से विरत रहा :

"हमें इस बाबत अनुकरणीय खर्चा अधिरोपित करना चाहिए था किन्तु इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि उच्च न्यायालय ने पहले ही 25000/- रुपए का खर्चा अधिरोपित किया है, हम कोई और खर्चा अधिरोपित करने का प्रस्ताव नहीं करते ।"

इसी प्रकार **राजेन्द्र सिंह** बनाम **उपराज्यपाल, अंडमान और निकोबार द्वीप समूह और अन्य,** (2005) 13 एस. सी. सी. 289 वाले मामले में न्यायालय ने देखा कि याची को प्राधिकारियों द्वारा अनावश्यक रूप से तंग किया गया था किन्तु यह ध्यान देते हुए कि उच्च न्यायालय ने 25000/- रुपए का खर्चा अधिरोपित किया था – अपने समक्ष खर्चा अनुज्ञात नहीं किया और "कोई खर्चा नहीं" के आदेश के साथ मामले का निपटान किया ।

भू-स्वामी और किराएदार के बीच विवाद से संबंधित **रविन्दर कौर** बनाम **अशोक कुमार और एक अन्य** (2003) 8 एस. सी. सी. 289 वाले मामले में न्यायालय ने महसूस किया कि वादगत अनुसूचीगत संपत्ति की पहचान से संबंधित किराएदार द्वारा उठाया गया विवाद बेदखली को विलंबित करने का हौआ था और 25,000/- रुपए का अनुकरणीय खर्चा अधिरोपित किया ।

केरल राज्य बनाम **थ्रेसिया और एक अन्य** 1995 सप्लीमेंट (2) एस. सी. सी. 449, भूस्वामी और किराएदार के बीच विवाद से उद्भूत मामले में न्यायालय ने महसूस किया कि अनुकरणीय खर्चा राज्य सरकार पर अधिरोपित किया जाना चाहिए और इस निदेश के साथ 10,000/- रुपए खर्चा अधिरोपित किया कि यह संबद्ध अधिकारी और उस काउंसेल जिसने विशे-ा इजाजत याचिका फाइल करने की सिफारिश की थी, से संगृहीत किया जाएगा ।

राम अवतार अग्रवाल और अन्य बनाम **कलकत्ता निगम और अन्य** (1999) 6 एस. सी. सी. 532 वाले मामले में न्यायालय ने इस बात पर ध्यान देते हुए कि विभिन्न कार्यवाहियां, हक वाद आदि निगम द्वारा किए गए ढहाने के आदेश को विफल करने के लिए पक्षकार द्वारा फाइल किए गए थे, यह मत व्यक्त किया कि अपीलार्थी द्वारा की गई कार्यवाहियां न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है और इस परिस्थिति में 1 लाख रु. के खर्चे का परिनिर्धारण किया ।

कावरी प्राइ. लि. बनाम **शिवनाथ श्राफ और अन्य** (1996) 1 एस. सी. सी. 690, वाले मामले में एक ऐसे वाद के संबंध में जो व-र् 1981 में आरंभ हुआ और न्यायालयों के अधिक्रम के पश्चात् अंततः व-र् 1996 में उच्चतम न्यायालय द्वारा अंतिम रूप से विनिश्चित किया गया, न्यायालय ने खर्चा अधिनिर्णीत करते समय प्रत्येक अपील में 10,000/- रुपए का खर्चा परिनिर्धारित किया । यह स्प-ट नहीं है कि क्या सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंधों के अनुसार सफल पक्षकार द्वारा खर्चे का दावा किया जा सकता था और यदि किया जा सकता हो तो क्या उक्त पक्षकार इस प्रकार परिनिर्धारित खर्चे की रकम का हकदार होगा ।

भूपिन्दर पाल सिंह बनाम **नागर विमानन महानिदेशक और अन्य**, (2003) 6 एस. सी. सी. 633, वाले मामले में उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश और खंड न्यायपीठ द्वारा विनिश्चित सेवा विवाद में, उच्चतम न्यायालय ने अपील मंजूर करते हुए 10,000/- रुपए का खर्चा परिनिर्धारित किया ।

भारत संघ और अन्य बनाम **शैक अली,** 1989 सप्लीमेंट (2) एस. सी.सी. 717, वाले मामले में अपरिपक्व सेवानिवृत्ति से संबंधित विवाद के मामले में इसे अपास्त करते हुए न्यायालय ने 3000/- रुपए खर्च परिनिर्धारित किया यद्यपि आरंभतः न्यायनिर्णयन केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण और इसके पश्चात् उच्चतम न्यायालय द्वारा किया गया था ।

श्रीनिवास सहकारी बिल्डिंग सोसाइटी लि. बनाम **मैडम गुरुमूर्ति शास्त्री और अन्य** (1994) 4 एस. सी. सी. 675, भूमि अर्जन से संबंधित विवाद वाले मामले में यह अभिनिर्धारित करते हुए कि धारा 6 की घो-ाणा शक्ति का छद्म प्रयोग था, खर्चा 10000/- रुपए परिनिर्धारित किया, यद्यपि मामले के न्यायनिर्णयन में उच्च न्यायालय का एकल न्यायाधीश, खंड न्यायपीठ और इसके पश्चात् उच्चतम न्यायालय अंतर्ग्रस्त था ।

भारतीय जीवन बीमा निगम बनाम **शान्ता** (2004) 13 एस. सी. सी. 748, वाले बीमा से संबंधित मामले में, एल. आई. सी. द्वारा फाइल अपील को खारिज करते हुए, न्यायालय ने प्रत्यर्थी को खर्चे का निदेश दिया और मुकदमा खर्चा 25000/- रुपए परिनिर्धारित किया ।

ओरियण्टल बीमा कंपनी लि. बनाम **ओजमा शिपिंग कंपनी और एक अन्य** (2009) 9 एस. सी. सी. 159, वाले मामले में, 21.50 लाख रुपए के मूल्य की समुद्री बीमा से संबंधित विवाद में जिसकी समाप्ति उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के अधीन रा-ट्रीय आयोग और इसके पश्चात् उच्चतम न्यायालय में हुई,बीमा कंपनी की अपील खारिज करते हुए न्यायालय ने 25,000/- रुपए का खर्चा परिनिर्धारित किया ।

पी. एच. दयानन्द बनाम **एस. वेणुगोपाल नायडू और अन्य** (2009) 2 एस. सी. सी. 233, वाले मामले हक से संबंधित वाद से उद्भूत मामले में इस तथ्य पर ध्यान देते हुए कि अपीलार्थी वाद की सुनवाई को बढ़ा रहा था, अपील खारिज करते समय न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि “उसे भुगतान करना चाहिए और वह प्रथम अपीलार्थी काउंसेल की फीस जिसका निर्धारण 75,000/- रुपए किया गया है, का खर्चा वहन करे ।”

मोहिन्दर सिंह बनाम **पंजाब राज्य और अन्य** (2007) 10 एस. सी. सी. 724, वाले बंधक के मोचन के मामले में न्यायालय ने खर्चा सहित अपील खारिज कर दिया और उपबंधित किया कि काउंसेल की फीस का परिनिर्धारण 25,000/- रुपए है ।
उद्यमी एवम् खादी ग्रामोद्योग कल्याण संस्था बनाम **उ. प्र. राज्य और अन्य** (2008) 1 एस. सी. सी. 560, वाले मामले में यह मत व्यक्त करते हुए कि अपीलार्थी ने बार-बार विधिक कार्यवाही का अवलंब लिया जो विधि के दुरुपयोग के समान है और खर्चे सहित अपील खारिज करते हुए, काउंसेल की फीस का परिनिर्धारण 50,000/- रुपए किया ।

मुंबई अंतर्रा-ट्रीय विमापत्तन प्राइ. लि. बनाम **गोल्डेल चैरियट एयरफोट और एक अन्य** (2010) 10 एस. सी. सी. 422, वाले मामले में लोक परिसर (अप्राधिकृत अधिभोगी की बेदखली) अधिनियम, 1971 के अधीन कार्यवाहियों में जिसमें कार्यवाहियों की पैरवी आरंभ में सपंदा अधिकारी और इसके पश्चात् सिटी न्यायालय मुंबई आदि में हुई, न्यायालय ने यह ध्यान दिया कि प्रतिपक्षी प्रत्यर्थी ने असंगत आधार उठाए और कई कार्यवाहियों को एक दशक से अधिक समय तक चलने दिया । "500000/- (पाच लाख रुपए) के खर्चे का निर्धारण किया" और यह निदेश दिया कि इसे उच्चतम न्यायालय मध्यस्थ केन्द्र को संदत्त किया जाए ।

यह स्मरणीय है कि **अशोक कुमार मित्तल** बनाम **राम कुमारगुप्ता और एक अन्य** (2009) 2 एस. सी.सी. 606 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण, गैर-सरकारी संगठनों, आदि में रकम जमा करने के निदेश देने के बारे अपनी अप्रसन्नता जाहिर की थी ।

अली जावद अमीरहानन रिजवी बनाम **इंडो-फ्रैन्च बायोटेक इन्टरप्राइजेज लि. और अन्य** (2000) 9 एस. सी. सी. 373, वाले मामले में उच्च न्यायालय के आदेश को चुनौती देने वाली एक कार्यवाही में जिसके द्वारा उच्च न्यायालय में रिट याचिका खारिज करते हुए 1 लाख रुपए का खर्चा अधिरोपित किया था, न्यायालय ने ध्यान दिया कि उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए नि-कर्-ाें पर यह संदेह नहीं हो सकता है कि न्यायालय

का खर्चा परिनिर्धारित करना न्यायोचित था तथापि इसे उच्च न्यायालय के आदेश को कायम रखते हुए 1 लाख रुपए से घटाकर 50,000/- रुपए कर दिया जो कि इसे रा-ट्रीय नेत्रहीन एसोसिएशन को संदत्त किया जाए जो कार्यवाही का पक्षकार नहीं था । इस व्यवहार की (2009) 2 एस. सी. सी. 656 (पूर्वोक्त) में प्रतिकूल टिप्पणी की गई ।

हरियाणा शहरी विकास प्राधिकरण बनाम **के. सी. काड** (2005) 9 एस. सी. सी. 469 वाले भूखंड के आबंटन से संबंधित उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के अधीन विवाद में न्यायालय ने उच्चतम न्यायालय के समक्ष खर्चा परिनिर्धारित करते हुए 500/- रुपए की अल्प रकम नियत किया और निदेश दिया कि इसे उच्चतम न्यायालय की विधिक सहायता सोसाइटी को सदंत्त किया जाए । यह विभिन्न उपभोक्ता मंचों के न्यायनिर्णयन से अंतर्वलित मामला था ।

एसोसिएटेड कंस्ट्रक्शन बनाम **पवन हंस हेलीकॉप्टर लि.** (2008) 16 एस. सी. सी. 128 माध्यस्थम कार्यवाहियों के मामले में जहां न्यायालय ने महसूस किया कि पवन हंस ने घेरा डाले ठेकेदार का फायदा उठाया, अतः ठेकेदार खर्चे का हकदार है, तथापि, इसका परिनिर्धारण केवल 10,000/- रुपए किया ।

इंडिया सीमेंट लि. बनाम **केन्द्रीय उत्पाद शुल्क कलक्टर** 1989 (2) एस. सी. आर. 715 वाले मामले में, अपीली कलक्टर अपीली अधिकरण और इसके पश्चात् उच्चतम न्यायालय स्तर के न्यायनिर्णयन वाले केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिनियम के अधीन मामले जिसमें खर्चा संदत्त किए जाने का निदेश दिया गया, जिसका परिनिर्धारण 10,000/- रुपए किया गया था ।

दिल्ली विद्युत आपूर्ति उपक्रम बनाम **बसन्ती देवी और एक अन्य** (1999) 8 एस. सी. सी. 229 वाले मामले के यह ध्यान देते हुए कि दिल्ली विद्युत आपूर्ति उपक्रम की ओर से एल. आई. सी. प्रीमियम प्रे-ित करने में व्यतिक्रम हुआ था जिसके कारण प्रत्यर्थी को क-ट उठाना पड़ा था, न्यायालय ने खर्चे सहित अपील मंजूर करते हुए इसका परिनिर्धारण 25,000/- रुपए किया जबकि वह रकम जो एल. आई. सी. द्वारा प्रत्यर्थी को संदत्त किया जाना था, ब्याज सहित 50,000/- रुपए विनिर्दि-ट था ।

बर्न स्टैन्डर्ड कंपनी लि. बनाम **मैक्डरोमोट इन्टर नेशनल इन्क और एक अन्य** (1991) 2 एस. सी. सी. 669 वाले मामले में तकनीकी सहयोग करार और माध्यस्थम करार पर विचार करते हुए उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त करते हुए कि अपीलार्थी का आचरण ऐसा था जो हमारे उद्यमियों की छवि और विश्वसनीयता को विदेशों में धूमिल करता था, खर्चे सहित अपील को खारिज करते हुए 5000/- रुपए खर्चा परिनिर्धारित किया ।

श्रीमती लता कामत बनाम **विलास** (1989) 2 एस. सी. सी. 613 वाले विवाह संबंधी विवाद में न्यायालय ने 2500/- रुपए का खर्चा परिनिर्धारित किया ।

एम. एस. पाटिल (डा0) बनाम **गुलबर्ग विश्वविद्यालय** (2010) 10 एस. सी. सी. 63 वाले मामले में विश्वविद्यलाय में रीडर के रूप में याची की नियुक्ति पर न्यायालय ने खर्चे सहित अपील खारिज कर दिया और 50,000/- रुपए का खर्चा परिनिर्धारित किया । निर्णय के परिशीलन से यह जाहिर होता है कि न्यायालय ने इसे गंभीरता से लिया जिस रीति से अंतरिम आदेश अभिप्राप्त किए गए थे और याची लगभग 17 व-र्ों तक पद पर बना रहा यद्यपि वह पद का हकदार नहीं था ।

भारत संघ बनाम **आर. पद्मनाथन** (2003) 7 एस. सी. सी. 270 वाले किराया नियंत्रण अधिनियम के अधीन विवाद के मामले में अपील खारिज की गई खर्चे का परिनिर्धारण 15000/- रुपए किया गया ।

बोन्डर और एक अन्य बनाम **हेम सिंह और अन्य** (2009) 12 एस. सी. सी. 310 वाले मामले में यह नि-क-र्ा निकलने पर कि प्रतिवादी का विधि या साम्या किसी भी दृ-ि्ट से कोई मामला नहीं बनता, न्यायालय ने अपील मंजूर की और प्रतिवादी द्वारा खर्चा संदत्त किए जाने के लिए 50,000/- रुपए के खर्चे को परिनिर्धारण किया ।

ओसवाल फैट्स एंड आइल लि0 बनाम **अपर आयुक्त (प्रशासन), बरेली,** (2010) 4 एस. सी. सी. 728 वाले मामले में, न्यायालय ने यह मत

व्यक्त करते हुए कि अपीलार्थी ने स्वच्छ मन से न्यायिक कल्प और न्यायिक मंच, उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय में आवेदन नहीं किया और अंतरिम आदेश प्राप्त करने में सफल रहा, 2 लाख रुपए का खर्चा परिनिर्धारित करते हुए संदाय का निदेश दिया ।

सीता राम भंडार सोसाइटी, नई दिल्ली बनाम **उपराज्यपाल, रा-ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली सरकार** (2009) 10 एस. सी. सी. 501 वाले मामले में, भूमि अर्जन कार्यवाहियों पर विचार करते हुए, न्यायालय ने मत व्यक्त करते हुए उठाए गए अभिवाक् निरर्थक प्रकृति के थे और अर्जन जो लोकहित में था, विफल तथा विलंबित करने के आशय के थे, खर्चे के साथ अपील खारिज कर दी और खर्चे का परिनिर्धारण 2 लाख रुपए किया ।

एन. वी. श्रीनिवास मूर्ति बनाम **मरियम्मा** (2005) 5 एस. सी. सी. 548 वाले मामले में न्यायालय ने न केवल यह निदेश दिया, "प्रत्यर्थियों द्वारा अद्योपान्त उपगत व्यय को अपीलार्थियों द्वारा संदत्त किया जाए" और इसके अलावा यह निदेश दिया कि 10,000/- रुपए की रकम का अतिरिक्त खर्चा अपीलार्थी द्वारा "निराशाजनक वर्जित वाद में इस न्यायालय तक मुकदमा चलाने और बढ़ाने के लिए" प्रत्यर्थी को संदत्त किया जाए ।

भारतीय इनवायरो-लीगल एक्शन परि-ाद और अन्य बनाम **भारत संघ और अन्य** (1996) 3 एस. सी. सी. 212 वाले मामले में, लोकहित वि-ाय का एक मुकदमा छः व-ा की अवधि तक चलता रहा, न्यायालय ने 50,000/- रुपए का खर्चा अधिनिर्णीत किया ।

तथापि, **मोहमाद महीबुल्ला और एक अन्य** बनाम **सेठ चमन लाल और अन्य** (1991) 4 एस. सी. सी. 529 वाले मामले में जहां मुकदमा खिंचता गया और दस व-ाों तक चलता रहा, वहां खर्चा केवल 1000/- रुपए अधिरोपित किया गया ।

"हम प्रत्यर्थियों के काउंसेल से सहमत हैं कि यह अपीलार्थियों की ओर

से उपेक्षा का मामला है इसलिए, प्रत्यर्थी जिन्हें 10 व-र्गों तक इन कार्यवाहियों में घसीटा गया को प्रतिकर प्रदान किया जाना चाहिए । हम निदेश देते हैं कि समुचित न्यायालय फीस के संदाय पर अपील न्यायालय में अपील का प्रत्यास्थापन 1000/- रुपए के खर्चे के संदाय की अतिरिक्त शर्त के अधीन होगा ।" (पैरा 7)

भारत संघ बनाम **आर. पद्मनाथन** (2003) 7 एस. सी. सी. 270 वाले मामले में न्यायालय ने यह नि-कर्-ा निकालते हुए कि सरकार ने अयुक्तियुक्त कार्य किया इस प्रकार निदेश दिया **:**

"प्रत्यर्थी को उसके सभी प्रयासों के लिए आरंभ से पूर्णतः सभी बातों से इनकार कर अनावश्यक मुकदमे में खींचा गया और इस न्यायालय में भी कार्यवाहियों का सामना करना पड़ा । अपीलार्थी अपने खर्चे वहन करते हुए प्रत्यर्थी के खर्चे के लिए 15,000/-रुपए का भुगतान करेगा ।"

पंजाब राज्य और अन्य बनाम **भजन सिंह और एक अन्य** (2001) 3 एस. सी. सी. 565 वाले मामले में, यह नि-कर्-ा देते हुए कि संबद्ध कर्मचारी का आचरण शिकायत की गई स्थिति का उत्तरदायी था और न्यायालय ने निदेश दिया कि व्यक्तिगत रूप से अंतवर्लित अधिकारी 25000/- रुपए खर्चा का संदाय करे ।

भारतीय नियत्रंक और महालेखापरीक्षक बनाम **के. एस. जगन्नाथन** (1986) 2 एस. सी. आर. 17 वाले मामले में न्यायालय ने निदेश दिया :–

"इस अपील के प्रयोजन के लिए प्रत्यर्थियों को बार-बार न्यायालय के समक्ष हाजिर होने के लिए नई दिल्ली आने के लिए मजबूर किया गया और अपने खाने और रहने का भी खर्च करना पड़ा था । अतः, अपीलार्थी इस अपील के खर्चे के द्वारा प्रत्येक प्रत्यर्थी को 1500/- रुपए की रकम अदा करेंगे ।" इस मामले में समाज के कमजोर वर्गों और कतिपय संवैधानिक उपबंधों का निर्वचन अंतवर्लित था ।

उपरोक्त निर्णय जो कुटुम्ब विवाद बेदखली कार्यवाही सेवा विवाद और वाणिज्यिक विवाद, कर विवाद, भूमि अर्जन आदि जैसे विभिन्न स्थिति और विभिन्न वि-ाय वस्तु वाले मामले के मात्र प्रतिनिधायी नमूने थे, से यह दर्शित होता है कि खर्चा के अधिनिर्णय या खर्चो की मात्रा के संबंध में कोई ज्ञेय मानक नहीं है और ऐसा ही अनुकरणीय खर्चे के संबंध में भी है । ऐसे भी दृ-टांत हैं जहां कार्यवाही के पक्षकार से भिन्न व्यक्ति को खर्चा संदत्त किए जाने के निदेश दिए जाते हैं जबकि कुछ निर्णयों में न्यायालय ने ऐसी पद्धति की निंदा की और सचेत किया है । खर्चा अधिरोपित किया जाए या खर्चा अधिरोपित न किया जाए, के प्रतिनिर्देश से न्यायालय के निर्णयों को देखने से किसी सिद्धांत का कोई संकेत नहीं मिलता और इससे कोई मार्गदर्शक सिद्धांत या मानक नहीं निकाला जा सकता । सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के प्रतिनिधायी नमूने केवल यह आस्था पैदा करते हैं कि इस समय खर्चा के अधिनिर्णय और मात्रा का वि-ाय पूर्णत् न्यायालय के विवेकाधिकार पर है और ऐसे विवेकाधिकार का प्रयोग किसी ज्ञेय सिद्धांतों के बिना किया जा रहा है ।

उपाबध -2

आंध्र प्रदेश अधिवक्ता फीस नियम, 2010

[आर ओ सी सं. 1004/एस.ओ./2007]

भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 और अधिवक्ता अधिनियम, 1961 की धारा 34(1क) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय निम्नलिखित नियम बनाता है :

नियम

1. इस नियम का संक्षित नाम अधिवक्ता फीस नियम,2010 है ।

2. ये नियम उच्च न्यायालय या उसके अधीनस्थ किसी अधीनस्थ न्यायालय की सभी कार्यवाहियों के उसके विरोधी अधिवक्ता की फीस की बाबत किसी पक्षकार द्वारा खर्चे के रूप में संदेय फीस को लागू होंगे ।

3. जब तक इन नियमों में संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हों :

(i) "अधिवक्ता" के अंतर्गत अधिवक्ता अधिनियम के अर्थान्तर्गत न्यायालयों में प्रैक्टिस करने के लिए प्राधिकृत प्लीडर सम्मिलित है ;

(ii) जिला न्यायालय से जिले का उच्चतम न्यायालय और सिविल न्यायालय अधिनियम के अर्थान्तर्गत ऐसे न्यायालय के समतुल्य कोई अन्य न्यायालय अभिप्रेत है और सम्मिलित है और सिटी सिविल न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश अपर मुख्य न्यायाधीश और हैदराबाद शहर के भीतर सिटी लघु वाद न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश और अपर मुख्य न्यायाधीश सम्मिलित है ;

(iii) "वरि-ठ सिविल न्यायाधीश न्यायालय" के अंतर्गत जिलों और हैदराबाद शहर में अपर वरि-ठ सिविल न्यायाधीश के न्यायालय सम्मिलित है और अपर न्यायाधीशों के न्यायालय, सिटी लघुवाद

न्यायालय सम्मिलित है ;

(iv) “सिविल न्यायाधीश (जूनियर डिवीजन) न्यायालय” के अंतर्गत जिले के अपर सिविल न्यायाधीश (जूनियर डिवीजन) के न्यायालय और सिटी सिविल न्यायालय के सहायक न्यायाधीश सम्मिलित हैं ।

भाग 1
अधीनस्थ न्यायालय

लघुवाद मामलों में

4. लघुवाद न्यायालय द्वारा विचारणीय सभी वादों में फीस न्यूनतम 300/- रुपए के अधीन रहते हुए दावाकृत रकम की 10% होगी ।

5. सभी धन वादों में, फीस की संगणना ऐसे वादों में जब यह 10,000/- रुपए से अधिक नहीं है, अंतवर्लित दावा के 10% दर पर की जाएगी ।

6. उपरोक्त निर्दि-ट ऐसे सभी वादों में जब अंतवर्लित दावा 10,000/- रुपए अधिक है, संदेय फीस पहले 10,000/- रुपए पर अंतवर्लित दावे के 10% दर पर और अगले 10,000/- रुपए पर 7% की दर से और जब दावा यथाउपरोक्त 20,000/- रुपए से अधिक हो जाता है और अगले 30,000/- रुपए पर 5% की दर से और अधिशे-ा पर दावे के 3% की दर पर संगणना की जाएगी ।

परंतु ऐसे सभी वादों में जिनका विचारण चार वाद या अधिक के समूह में किया जाता है और जहां साक्ष्य का अभिलेखन सम्मिलित रूप से किया जाता है और वादों का निपटान एक ही निर्णय द्वारा किया जाता है तो संदेय फीस प्रत्येक वाद में इस नियम के अधीन ग्राह्य फीस की 1/3 होगी ।

7. सभी वादों में जहां किसी संपत्ति के हक की कोई घो-ाणा कब्जे

या व्यादेश जैसे किसी अन्य पारिणामिक अनुतो-ा के साथ अंतवर्लित है वहां फीस सिविल न्यायाधीश (जूनियर डिवीजन) के न्यायालय में न्यूनतम 2000/- और 1,50,000/- रुपए अधिकतम के अधीन रहते हुए अन्य न्यायालयों में न्यूनतम 4000/- रुपए के अधीन रखते हुए वाद मूल्यांकन अधिनियम, 1956 या तत्समय प्रवृत्त किसी ऐसे अधिनियम के अधीन न्यायालय फीस के प्रयोजन के लिए मूल्य के रूप में ली गई संपत्ति के कुल मूल्य के 10% दर पर नियत की जाएगी ।

8. जंगम संपत्ति या इसके मूल्य की बरामदगी के सभी वादों में और भरण-पो-ाण या वार्-िाकताओं के सभी वादों में, संदेय फीस न्यूनतम 1000/- रुपए के अधीन रहते हुए धन के वादों के समान उसी रीति में नियत की जाएगी ।

9. मात्र व्यादेश के सभी वादों में फीस न्यूनतम 3000/- रुपए के अधीन रहते हुए धन वादों के समान नियत की जाएगी ।

10. विक्रय करार के प्रवर्तन या विनिर्दि-ट अनुतो-ा अधिनियम, 1877 किसी अन्य अनुतो-ा के सभी वादों में, फीस नियम 7 में वर्णित जंगम संपत्ति के हक की घो-ाणा के वाद और विक्रय संविदा के अधीन कब्जे की बरामदगी के किसी अन्य वाद या अन्यथा के समान नियत की जाएगी या ऐसी किसी संविदा के अधीन धन की बरामदगी भी इसी तरह की जाएगी ।

11. सुखाधिकार से संबंधित सभी वादों में, चाहे कोई प्रतिकर मांगा गया है या नहीं, फीस न्यूनतम 2000/- रुपए और अधिकतम 20,000/- रुपए के अधीन रहते हुए वाद में वर्णित दावे के मूल्य का 10% नियत किया जाएगा ।

12. खातों पर आधारित धन की बरामदगी के सभी वाद इन नियमों के प्रयोजन के लिए धन की बरामदगी के वाद माने जाएंगे और फीस उसमें ऐसे वादों के लिए उपबंध के अनुसार नियत की जाएगी ।

13. भागीदारी के विघटन और संयुक्त कुटुम्ब संपत्ति के विभाजन या

प्रशासन वाद के सभी वादों में, फीस उसमें दावाकृत अन्य अनुतो-ों की परवाह किए बिना अधिकतम 25,000/- रुपए के अधीन रहते हुए मूल्यांकन के 7% पर न्यायालय द्वारा नियत की जाएगी ।

14. न्यास संपत्ति या धर्मदाय संपत्ति से संबंधित वाद और किसी अन्य वाद जिसे आरंभतः मूल याचिका के रूप में फाइल किया गया था किन्तु वाद में उत्तराधिकार अधिनियम के उपबंधों के अधीन वाद में संपरिवर्तित कर दिया गया था या प्रशासन पत्र के प्रोवेट की मंजूरी के लिए फाइल याचिकाओं समेत सभी अन्य वादों में वाद के रूप में ऐसे संपरिवर्तन पर फीस अधिकतम 25,000/- रुपए के अधीन रहते हुए अंतवर्लित संपत्ति या संपदा के मूल्य का 7% नियत की जाएगी ।

15. विवाह संबंधी वादों से संबंधित सभी मूल याचिकाओं भूमि अर्जन मामलों, मोटर यान दुर्घटनाओं से संबंधित वादों, माध्यस्थम अधिनियम के अधीन दावों और उत्तराधिकार प्रमाणपत्र की मंजूरी या प्रोवेट लेटर के मामलों में फीस नीचे नियम 18 क उपबंध के अधीन रहते हुए न्यायालय द्वारा 15,00/- रुपए से कम और 25,000/- रुपए से अनधिक स्वविवेक पर नियत की जाएगी ।

16. उपरोक्त सभी मामलों में जहां उपरोक्त वर्णित मूल याचिकाओं सहित वाद दावे या याचिकाओं का समझौता न्यायालय के बाहर हो जाता है या निर्णय की घो-णा किए जाने के पूर्व किसी समय समायोजन हो जाता है या अन्यथा प्रतिवाद के बिना निपटान हो जाता है, फीस का आधा अनुज्ञात किया जाएगा ।

17. ऐसे अधि-ठायी प्रकृति के सभी वादों या अन्य कार्यवाहियां जो व्यतिक्रम के आधार पर खारिज हो जाती है, को धन वाद माना जाएगा और न्यायालय प्रतिवाद पर संदेय फीस के आधे पर अन्य पक्षकार को संदेय फीस नियत करेगा ।

18. सभी मूल याचिकाओं में चाहे यह विवाह संबंधी, या उत्तराधिकार अधिनियम के अधीन या भूमि अर्जन अधिनियम के अधीन या माध्यस्थम अधिनियम के अधीन दावा है और यदि उक्त कार्यवाही या याचिका का

प्रतिवाद नहीं किया जाता है तो अन्यथा संदेय फीस का आधा इन नियमों के अधीन फीस के रूप में संदत्त किया जाएगा ।

19. जब कभी किसी वाद की पुनर्विलोकन पर पुनःसुनवाई की जाती है तो सफल पक्षकार ऐसे वाद में इन नियमों के अनुसार कराधेय फीस का आधार पाने का हकदार होगा और यही उपरोक्त किसी मूल याचिका को लागू होगा ।

20. किसी जिला न्यायालय में फाइल किसी निर्णय आदेश या डिक्री के विरुद्ध सभी अपीलों में फीस उसी रीति से नियत की जाएगी जैसा उपरोक्त उपबंधित विचारण न्यायालय में किया जाता है । इस नियम के प्रयोजन के लिए सिविल प्रकीर्ण अपील में, फीस की संगणना नीचे नियम 22 के अनुसार की जाएगी ।

21. प्रथम बार फाइल सभी नि-पादन याचिकाओं में न्यायालय प्रतिवाद के मामले में उपरोक्त नियमों के अधीन यथास्थिति वाद या कार्यवाही में अनुज्ञात फीस का 1/2 और जहां प्रतिवाद नहीं किया गया है ऐसे मामलों में 1/4 फीस नियत की जाएगी ।

22. तीसरे पक्षकार द्वारा फाइल याचिकाओं और वाद या कार्यवाही के किसी पक्षकार द्वारा तीसरे पक्षकार द्वारा जो ऐसा प्रत्याहरण (आयकर विभाग सहित) करने का हकदार नहीं है, न्यायालय में जमा की गई रकम का प्रत्याहरण करने के लिए याचिकओं समेत किसी वाद या अन्य कार्यवाहियों में फाइल सभी अंतवर्ती आवेदनों में न्यायालय अधिकतम 3000/- रुपए के अधीन रहते हुए 250/- रुपए से अन्यून फीस नियत करेगा ।

23. निम्नलिखित विशे-ा मामलों में फीस नीचे किए गए उल्लेख के अनुसार होगी :

(क) (i) अन्तराभिवचन वादों में मूल वादी के अधिवक्ता को दी जाने वाली फीस अधिकतम 1500/- रुपए के अधीन रहते हुए नियम 5 के अधीन विहित फीस का एक चौथाई होगी ।

(ख) (i) घो-णात्मक वाद में जहां वि-ाय वस्तु जिसकी बाबत दावाकृत अनुतो-ा मूल्यांकन योग्य, फीस नियम (5) में विहित मापमान के अनुसार होगी, जहां ऐसा मूल्यांकन करना संभव नहीं है, वहां न्यायालय सिविल न्यायाधीश (जूनियर डिवीजन) के न्यायालय में न्यूनतम 1500/- रुपए और अधिकतम 3000/- रुपए के अधीन रहते हुए और वरि-ठ सिविल न्यायाधीश के न्यायालय या जिला न्यायालय में न्यूनतम 2000/- रुपए और अधिकतम 5000/- रुपए फीस नियत करेगा ।

24. भारतीय रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 77 के अधीन वाद में न्यायालय मामले में लगे समय को ध्यान में रखते हुए स्वविवेक से न्यूनतम 1000/- रुपए और अधिकतम 3000/- रुपए नियत करेगा ।

25. दिवालिया अधिनियम के अधीन सभी कार्यवाहियों में यदि कार्यवाही का प्रतिवाद किया जाता है, तो फीस 1500/- रुपए से कम नियत नहीं की जाएगी और यदि मामले में प्रतिवाद किया गया हो तो न्यायालय 750/- रुपए फीस नियत करेगा ।

26. आंध्र प्रदेश भवन (एल. आर. आर. ई.) नियंत्रण अधिनियम के अधीन सभी कार्यवाहियों और उस पर किसी आदेश से उद्भूत अपीलों में फीस 2000/- रुपए से अन्यून और 5000/- रुपए अनधिक नियत की जाएगी ।

27. किसी अधिनियम के अधीन अधीनस्थ न्यायालय में फाइल सभी निर्वाचन अर्जियों में फीस 2000/- रुपए से अन्यून और 10000/- रुपए से अनधिक नियत की जाएगी ।

28. अन्यथा अनुपबंधित और किसी भी प्रकृति के सभी वादों में, न्यायालय फीस 1000/- रुपए से अन्यून और 5000/- रुपए से अनधिक नियत करेगा ।

29. अन्य किसी मामलों में न्यायालय 1000/- रुपए से अन्यून और

5000/- रुपए से अनधिक फीस नियत करेगा ।

30. किसी अधिनियम के अधीन सभी अन्य कार्यवाहियों में और किसी वाद में जब किसी रकम का दावा नुकसानी के रूप में किया जाता है तो न्यायालय धन वाद की तरह फीस नियत करेगा ।

31. ऐसे सभी मामलों में जहां दावा का मूल्य 5000/- रुपए से अधिक है और ऐसे सभी मामलों में जहां बार में 15 वर्न्ा से अधिक समय से वकालत करने वाला अधिवक्ता के साथ अभिवचन के प्रक्रम से एक जूनियर अधिवक्ता सहायता कर रहा है, इन नियमों के अनुसार अनुज्ञेय फीस की एक तिहाई दर पर संगणित अतिरिक्त फीस न्यायालय द्वारा नियत की जाएगी ।

32. जहां अपील करने पर किसी वाद को प्रतिप्रेन्ाित किया जाता है और उच्च न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालय में नए सिरे से सुनवाई की जाती है वहां उक्त प्रकृति के वाद के लिए इन नियमों के अधीन विहित फीस का आधा नियत किया जाएगा ।

33. सिविल न्यायाधीश (जूनियर डिवीजन) का न्यायालय या समतुल्य पंक्ति कोड न्यायालय ऐसे निबंधनों पर स्थगन मंजूर कर सकेगा जिसका खर्चा किसी एक अवसर पर 200/- रुपए से अधिक न हो ।

34. वरि-ठ सिविल न्यायाधीश का न्यायालय या समतुल्य पंक्ति का कोइ न्यायालय ऐसे निबंधनों पर स्थगन मंजूर कर सकेगा जो वह ठीक समझे जिसका खर्चा किसी एक अवसर पर 300/- रुपए से अधिक न हो ।

35. जिला न्यायाधीश का न्यायालय या समतुल्य पंक्ति का कोई न्यायालय ऐसे निबंधनों पर स्थगन मंजूर कर सकेगा जो वह ठीक समझे जिसका खर्चा किसी एक अवसर पर 500/- रुपए से अधिक नहीं होगा ।

36. कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम के अधीन कुटुम्ब न्यायालय द्वारा विचारणीय सभी मामलों में कोई फीस नियत नहीं किया जाएगा परंतु यह

कि यदि न्यायालय की यह राय है कि कोई पक्षकार कार्यवाहियों के लंबित होने के पहले या इसके दौरान बहुत कठिनाई झेली थी तो वह स्वविवेक पर 1000/- रुपए से अन्यून और 5000/- रुपए से अनधिक खर्चे का संदाय करने के लिए अन्य पक्षकार को निदेश दे सकेगा ।

भाग 2
उच्च न्यायालय

37. इसके अधीन विरचित नियम आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय में उपस्थित होने वाले अधिवक्ताओं को संदेय फीस का विनियमन करेंगे ।

38. धन के लिए वादों या उच्च न्यायालय (लेटर्स पेटेन्ट खंड 15 के अधीन अपील सहित) के अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा विनिश्चित किसी अन्य वाद या अन्य कार्यवाहियों से उद्भूत सभी अपीलों में फीस विचारण न्यायालय की फीस के समान दर पर नियत की जाएगी ।

39. ऐसे सभी मामलों में जहां खर्चे मंजूर किए गए हैं, फीस रकम का आधा नियत की जाएगी यदि सुनवाई के समय अपील का प्रतिवाद नहीं किया गया है या यदि अपील सुनवाई के पहले या इसके दौरान वापस ले ली गई है या अपील का निपटान निरर्थक होने के रूप में किया गया है ।

40. उच्च न्यायालय में फाइल सभी सिविल प्रकीर्ण अपीलों में ऐसी फीस नियत की जाएगी जैसे निचले न्यायालय में ऐसी कार्यवाही जिससे ऐसी सिविल प्रकीर्ण अपीलें उद्भूत हुई है, होती है ।

41. अपील या अन्य कार्यवाहियों के सभी सिविल प्रकीर्ण याचिकाओं में न्यायालय 500/- रुपए न्यूनतम पर सफल पक्षकार को संदेय फीस नियत की जाएगी जब कभी खर्चे ऐसी याचिकओं में संदत्त किए जाने के निदेश दिए जाए ।

42. जब कभी बार में 15 वर्-ा से अधिक समय से वकालत कर रहे काउंसेल के साथ उस समय से जूनियर काउंसेल सहायता करता है जब से न्यायालय में हाजिर होते हैं वहां वरि-ठ काउंसेल को संदेय फीस का

1/3 रकम की अतिरिक्त फीस 1000/- रुपए न्यूनतम के अधीन रहते हुए न्यायालय द्वारा नियत की जाएगी ।

43. भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन सभी याचिकाओं और लेटर्स पेटेन्ट के खंड 15 के अधीन उससे उद्भूत सभी अपीलों में इसकी परवाह किए बिना कि यथास्थिति, याचिका या अपील मंजूर की गई है, खारिज की गई है या निपटायी गई है, न्यायालय ऐसी फीस नियत करेगा जो वह उचित और ठीक समझे ।

44. इन नियमों के प्रयोजन के लिए चाहे उच्च न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालय या उच्च न्यायालय में नियत की जाने वाली फीस से निर्बंधित है, दावे के मूल्यांकन की रकम वाद या अपील के ज्ञापन या प्रति आक्षेप में उपवर्णित अनुसार होगी और भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन आवेदन में ऐसे मूल्यांकन का उल्लेख करना आवश्यक नहीं होगा ।

45. उच्च न्यायालय में फाइल सभी निर्वाचन अर्जियों में प्रत्येक लड़ रहे प्रत्यर्थी के लिए 10,000/- रुपए अन्यून फीस नियत की जाएगी ।

46. सभी सिविल पुनरीक्षण याचिकाओं और द्वितीय अपीलों में फीस 1000/- रुपए से अन्यून होगी ।

47. अन्यथा अनुपबंधित सभी कार्यवाहियों में खर्चा न्यायालय के विवेक पर नियत किया जाएगा ।

48. सभी मामलों में संदेय फीस दस रुपए, चार रुपए या कम के नजदीक तक पूर्णांक में किया जाएगा और पांच रुपए या अधिक को दस रुपए दर्शाया जाएगा ।

49. न्यायालय ऐसे मामलों में ही फीस के पृथक सेट का आदेश देगा जहां पक्षकार तदुपरि सफल होने वाले पक्षकार को पृथक और विनिर्दि-ट सारतः स्वतंत्र आधारों पर अग्रसर होता है या सफल होता है और संपत्ति के मूल्य की सीमा तक या उसके द्वारा अंतर्गत आने वाले रकम पर

सफल होता है बशर्ते, न्यायालय प्रत्येक लड़ रहे पक्षकार की दशा में संदेय फीस पक्षकारों के बीच विभाजन करने में स्वतंत्र होगा जब कभी यह वांछनीय समझा जाता है और ऐसे सभी मामलों में यह आवश्यक नहीं होगा कि इस प्रकार मंजूर की गई कुल रकम संदेय फीस का कुल जोड़ हो सकेगी या नहीं हो सकेगी यदि मामला विनिश्चित नहीं किया गया था मानो फीस का एक सेट नियत किया जाना था ।

50. यहां उपबंध किए गए मामलों मं संदेय फीस उच्च न्यायालय के स्वविवेक पर होगी और इनमें की कोई बात अनुकरणीय खर्चा मंजूर करने की उच्च न्यायालय की अधिकारिता को कम करने वाली नहीं समझी जाएगी ।

51. प्रत्येक अधिवक्ता एक प्रमाणपत्र प्रस्तुत करेगा कि उसने निर्णय की तारीख से दो सप्ताह के भीतर वाद या अपील में दावाकृत फीस प्राप्त कर ली है ।

52. उच्च न्यायालय में संदेय फीस से संबंधित नियम आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की अपीली पक्ष नियम के अनुसार संदेय फीस नियम समझे जाएंगे ।

53. सभी मूल पक्ष मामले और कंपनी याचिकाओं और आवेदनों और किसी अन्य मामले जो उच्च न्यायालय के समक्ष वाद के रूप में लाए जाएं और विचारण किया जाए, में फीस विचारण न्यायालय में इसी प्रकृति के वाद के लिए विहित फीस से कम नहीं होगी और सभी कंपनी याचिकाओं या अन्य आवेदनों में, फीस 5000/- रुपए से अन्यून और 25,000/- रुपए अधिक नहीं होगी ।

54. अधिवक्ता फीस नियम, 1990 का निरसित किया जाता है ।